पाथेयिका
T.K.

तरुण-भारत-ग्रन्थावली सं० १५

पाथेयिका

[सामाजिक कहानियों का अपूर्व संग्रह]

लेखक
ठा० श्रीनाथसिंह जी

प्रकाशक
तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय,
दारागंज, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] सं० १९८६ बि० [मूल्य १) रु०

तरुण-भारत-ग्रन्थावली सं० १५

जीवन के चित्र

लेखक

ठा० श्रीनाथसिंह जी

प्रकाशक

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय,

दारागंज, प्रयाग

थमावृत्ति]   सं० १९८६ वि०   [मूल्य १) रु०

जीवन के चित्र

लेखक

ठा० श्रीनाथसिंह जी

भूमिका

[ले०—साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री]

श्रीबाबू श्रीनाथसिंह इस पुस्तक के निर्माता हैं। इस पुस्तक में श्रीनाथसिंह के व्यक्तित्व की पूरी-पूरी छाप है; और यही पुस्तक की विशेषता है। प्रसन्नता की बात है कि पुस्तक-लेखक ने कला के उन्माद में अपना समय व्यर्थ नहीं खोया है। इस पुस्तक में जितनी कहानियाँ हैं वे किसी खास मतलब से लिखी गयी हैं; और वह मतलब समाज के लिए हितकारी है—तथा उपयोगी है उनके लिए, जिनका हृदय अभी गठित हो रहा है।

सीधी-सादी भाषा में कहानियाँ लिखी गयी हैं। घटनाएँ साधारण हैं; पर समाप्त होते होते वे हृदय पर एक प्रभाव अंकित कर जाती हैं, जो अमिट होता है—यही व्यक्तित्व है पुस्तक-लेखक का। अगठित, तथा कतिपय गठित, हृदयों के सामने जो कठिनाइयाँ जीवन में उपस्थित होती हैं उन्हीं को लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से हल किया है।

साहित्य में कला का स्थान होता है, यह बात मुझे मालूम है; और मैं यह भी जानता हूँ कि कला का अवसर कब होता

हैं। घर में आग लगने के समय मलार गानेवाले सज्जन से सहानुभूति रखने पर भी, मैं उनके कार्य की प्रशंसा नहीं कर सकता। समाज पतनोन्मुख हो रहा हो, देशवासियों के सामने कोई मर्यादा न हो, उस समय यदि कोई हृदय कला का स्वप्न देखना चाहे, तो वह देख सकता है—कला की आराधना करना चाहे, तो वह कर सकता है; पर वह स्वप्न उसका निजी होगा—वह अराधना उसके मन की होगी—समाज से उसका कोई सम्बन्ध न होगा। उससे देश का कोई कल्याण न होगा। अतएव मैं श्रीनाथ बाबू के इस संग्रह की प्रशंसा करता हूँ।

एक युवक प्रति दिन यमुना-स्नान करने जाता है। एक नव-युवती भी प्रति दिन अपने छोटे भाई को लेकर वहाँ स्नान करने जाती है। इसी प्रसंग में युवक के हृदय में यौवन के विकार उत्पन्न होते हैं। परिचय होता है। युवक पढ़ने के लिए एक पुस्तक माँगता है; और वह "ब्रह्मचर्य" की एक पुस्तक युवती से पाता है। पहली कहानी का यही मतलब है। कहिए, कैसी सुन्दर समाप्ति है! यह लेखक का व्यक्तित्व है; और है उसकी विशेषता। मैं इस, तथा ऐसे लेखकों, की दीर्घजीविता की कामना करता हूँ—और इनके साहित्यिक उद्योग की प्रतीक्षा।

चन्द्रशेखर

अनुक्रमणिका

जीवन के चित्र

——:०:——

मेरी पथ-प्रदर्शिका

१

उन दिनों मैं रोज जमुना नहाने जाया करता था। मेरी दृष्टि उन स्त्रियों पर पड़ती थी जो वहाँ नहाने आती थीं। मैं तैरकर बहुत दूर गहरे जल में चला जाता था और किनारे की तरफ देखा करता था। रंग-बिरंगे ताजे फूलों से भरी मालिन की डलिया के समान वह घाट आज भी मेरे दिल में उसी प्रकार अङ्कित है।

एक दिन उस अमरपुरी को लज्जित करनेवाले घाट में एक नया ही फूल खिला। मेरी दृष्टि उस पर अटल हो गई। वह बहुत ही सुन्दर बाला थी। उसकी बड़ी बड़ी और काली काली बरौनियों में छिपे विशाल नेत्र अपनी कोई उपमा नहीं रखते थे। उसका चेहरा ताजे खिले गुलाब के फूल के समान प्रसन्न था। उसका शरीर एक सुन्दर साड़ी की शोभा बढ़ा रहा था। उसकी अँगुलियाँ एक उसी के समान छोटे बालक की सहचरी

थीं। वह उसी बालक के साथ नहा रही थी। बालक ने मेरी ओर इशारा करके उससे कहा—"दीदी, देख! तैलता है! कैछा अच्छा तैलता है! मैं भी तैलूँगा।"

उस युवती ने मेरी तरफ देखा। मेरी और उसकी आँखें चार हो गईं।

२

धीरे धीरे कई दिन बीत गये। इन दिनों में रोज मैंने तैरने की कला उन्हें दिखाई—रोज उस बालक ने कहा—"कैछा अच्छा तैलता है।" और रोज मेरी और उस युवती की आँखें चार हुईं।

अब मेरे दिल में एक प्रकार के प्रेम का उदय हुआ। मैं उस युवती की चिन्ता करने लगा। जब मैं नहाकर घर आता तो मेरी अजीब हालत हो जाती। लाख यत्न करने पर भी वह मुझे न भूलती।

अन्त में वह दिन भी आया जब वह मुझ से मुस्कराकर बोली—"आप बहुत अच्छा तैरते हैं।" उसकी इस बोली में, मालूम नहीं, कैसा जादू था। मैं उस दिन जमुना पार गया; और उसकी मुस्कुराहट ने तो मुझे मतवाला ही कर दिया। मुझे अपने तैरने की कला पर ही नहीं, अपने सुडौल शरीर पर भी बड़ा अभिमान हुआ। मैंने समझा—"मैं बड़ा खूब-

सूरत युवक हूँ।" मुझे राधा और कृष्ण का ध्यान हो आया। और मैं गुनगुनाने लगा—"वह मूरति नैनन माँझ बसी है।"

३

मैंने अपने मित्रों से अपनी सारी प्रणय-कथा कह सुनाई। यारों ने कहा—"ख़ूब! कमाल किया! अब क्या है!" मैं खूब ख़ुश होने लगा। वह बड़े अमीर घर की जान पड़ती थी। मैं कल्पना करने लगा—"यदि मेरा और इसका विवाह हो जायगा तो मैं बादशाह बन जाऊँगा।"

जब उसने कहा, "मेरे भैया को भी तैरना सिखा दो," तो मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा। जीवन में पहिली ही बार यह अपरिचित रमणी से बातचीत करने का अवसर था। मेरा यह आनन्द, कङ्गाल को गड़ी हुई लाखों की सम्पत्ति मिल जाने के आनन्द से कईगुना बढ़ कर था।

मैं उस तोतली बोली के आचार्य्य को लेकर गर्दन भर पानी में चला जाता, उसे अपने हाथों पर उठाये रहता और वह जल में अपने हाथ-पैर पीटता, यही उसका तैरना था। बालक की इस क्रीड़ा को वह युवती बड़े आनन्द और उत्साह से देखती थी; पर मैं भूल से समझता था कि वह मेरे ही रूप-सुधा का पान कर रही है।

एक दिन मेरे मुँह से निकल गया—"मुझे कोई किताब पढ़ने के लिए दो।"

"बहुत अच्छा" कहकर उस युवती ने मुस्करा दिया।

दूसरे दिन एक मधुर मुस्कराहट के साथ उसने मेरे हाथ में एक पुस्तक रख दी। मैंने उससे पुस्तक इसलिए माँगी थी कि उससे मैं उसके हृदय की जाँच करूँगा। देखूँगा कि उसका हृदय कैसा रसिया है, कैसे रँगीले उपन्यास पढ़ती है।

घर में पहुँचकर मैंने उस पुस्तक को खोला। प्रथम पृष्ठ पर मोटे अक्षरों लिखा था—"ब्रह्मचर्य्य और उसके पालन के नियम।"

इस घटना के बाद मैं उस युवती को आज तक फिर नहीं देख सका। पर उसका दिया हुआ—"ब्रह्मचर्य्य और उसके पालन के नियम" मेरे रोम रोम में लिख गया है। किसे मालूम था कि एक स्त्री के प्रेम का परिणाम महान संयम होगा।

किशोरी

१

लड़कियाँ बड़ी होकर क्या पाती हैं? बढ़िया साड़ियाँ! कीमती गहने! कुंजियों के गुच्छे! पर किशोरी को बिलकुल उलटा अनुभव हुआ। बड़ी होने पर उसे कुछ न मिला! उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो वह लड़की के बाद स्त्री न होकर कोई ऐसी चीज़ होगई, जिसकी इस संसार को ज़रूरत ही नहीं है।

एक वह दिन था जब चूड़ीवाली उसे ज़बरदस्ती चूड़ियाँ पहना देती थी, और एक आज है, जब वह आती है, सब को चूड़ियाँ पहनाती है और उसकी तरफ देखती भी नहीं। जिस प्रकार उल्लू सूरज को नहीं देखना चाहता उसी प्रकार उसकी मैली धोतियाँ धोबी का घर नहीं देखना चाहतीं। जिस प्रकार पुराने खयाल के ब्राह्मण लोग अछूतों से भागते हैं उसी प्रकार गहने उससे भागते हैं। बेचारी की समझ में नहीं आता कि इन सब बातों का कारण क्या है!

किशोरी समझे चाहे नहीं, हमारे पाठक समझ गये होंगे कि वह विधवा है—और ऐसी विधवा है जिसने अपने पति का मुँह तक नहीं देखा।

२

यहाँ किशोरी के माँ-बाप का थोड़ा सा परिचय दे देना अनुचित न होगा। किशोरी के पिता पं० राधाचरण दुबे शंकर के बड़े भक्त हैं। गङ्गा-स्नान करते हैं और भङ्ग पीते हैं। उनकी समझ में इन्हीं तीन बातों से हिन्दूधर्म अब तक कायम है। किशोरी की माता सरल स्वभाव की गृहिणी है। उसकी सब आशाएँ पूरी हो चुकी हैं। सिर्फ दो बाकी हैं—एक तो उसे अपने तेरह वर्ष के लड़के की शादी करनी है और दूसरे रेल पर चढ़कर काशी-विश्वनाथ का दर्शन करने जाना है। इन दो के बाद शायद वह वैराग्य ले ले।

किशोरी का भाई कानपूर में अपने मामा के पास अंग्रेजी पढ़ता है; पर माँ-बाप की यह इच्छा नहीं है कि वह बहुत पढ़े। चिट्ठी लिखनी उसे आ गई है। अँग्रेजी में नाम-पते लिख लेता है। इतना काफी है। और फिर अभी उसे घर पर रहकर जमीदारी का काम भी तो सीखना है। शायद घर पर उसकी तबीयत न लगे, इसीलिए उसके विवाह की बात सोची जा रही है।

किशोरी के विधवा होने का माँ-बाप को बड़ा दुःख है। पर यह दुःख तो किसी प्रकार सहना ही होगा। जाति में कुछ लोग विधवा-विवाह के पक्ष में हैं। कुछ कहते हैं, बाल-विधवाओं का विवाह तो अवश्य ही हो जाना चाहिए। पर राधाचरण दुबे इन दोनों बातों के विरुद्ध हैं। विधवा-विवाह करना शुद्ध-सनातन-धर्म पर आघात करना है, ऐसी उनकी धारणा है। आह! ईश्वर, क्या लोगों के ऐसे गलत विचार कभी दूर न होंगे।

३

धीरे धीरे किशोरी को मालूम हो गया कि जिसके साथ उसका विवाह हुआ था, वह तारों में मिलकर चमक रहा है। उसने रात रात भर टकटकी बांधकर तारों को देखा; पर किसी में मनुष्य की कोई शक्ल दिखाई न पड़ी। एक दिन आकाश की ओर देखते हुए उसने अचानक कह दिया—"अरे! निर्मोही! कहां हो?"

बेटी के ये शब्द माता के कानों में पड़ गये। उसने पूछा—"क्या कहा?"

"कुछ नहीं" कहकर किशोरी मारे लज्जा के अपने सोने के कमरे में भाग गई।

माता ने समझा, बेटी के दिल में कोई युवक स्थान कर रहा है। अब वह उससे खूब सावधान रहने लगी। उसका घर से बाहर आना-जाना बन्द कर दिया गया। बाहर के स्त्री-पुरुषों से बोलना-चालना बन्द कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि किशोरी का चित्त और भी ऊबने और दुखी रहने लगा।

मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि वह खाली नहीं बैठ सकता। उसे कुछ न कुछ काम चाहिए। किशोरी को भी एक काम मिल गया। उसके बाल बहुत बड़े बड़े थे; और बहुत सुन्दर लगते थे। उसने उन्हें सँवारना शुरू कर दिया। एक कंघा ले लेती और सामने शीशा रख लेती। इस प्रकार वह दिन दिन भर बाल ही सँवारती रहती। कभी उनको किसी तरह बाँधती और कभी किसी तरह। चार-पाँच महीने में उसे बाल सँवारने और बाँधने की इतनी तरकीबें आगईं; और वह इस काम में इतनी दक्ष हो गई कि छोटी छोटी लड़कियाँ उसी से अपने केश सुधरवाने लगीं। लड़कियों की यह भीड़ किशोरी की माँ को अच्छी नहीं लगी। उसने एक दिन आकर कहा—

"बेटी, तू इतना बाल क्यों सँवारती है ?"

किशोरी ने जवाब दिया—"माँ, बाल सँवारने में क्या हर्ज है ?"

"विधवा को बाल नहीं सँवारना चाहिए।"

"अच्छा मैं अपने बाल नहीं सँवारूँगी।"

"तू किसी के भी बाल नहीं सँवार सकती। मालूम नहीं, क्या अनर्थ हो जाय।"

किशोरी कुछ न बोली। माता की बातें सुनकर उसका हृदय रो उठा। हाय! वह अपने हाथों से अपने ही बाल नहीं सँवारने पाती! उस दिन जितनी भी गाँव की लड़कियाँ

आईं, उसने सबको, तबीयत खराब होने का बहाना करके, विदा कर दिया।

४

किशोरी अपने बालों के कारण बहुत सुन्दर मालूम होती थी। विधवा को बहुत सुन्दर नहीं मालूम होना चाहिए, सोचकर एक दिन राधाचरण ने अपनी पत्नी से कहा—"बेटी के बाल कतर दो तो अच्छा है—जब जीवन में कुछ नहीं है तो खाली बाल लेकर क्या करेगी ?"

माँ को यह सलाह ठीक जँच गई। उसने फौरन कैंची लेकर किशोरी के सिर पर चढ़ाई कर दी।

"माँ, मेरे बाल मत काटो! मेरी माँ, मेरे बाल मत काटो!" कहकर किशोरी रोने लगी।

माता के भी आँखों में आँसू आगये। पर धर्म के मामले में वह क्या कर सकती है। उसने अपना काम जारी रक्खा।

किशोरी ने बड़े जोर से रोकर कहा—"माँ, मान जाओ! केवल बाल मत काटो! काटना ही है तो सिर ही काट लो! मैं चाहती हूँ, मेरे सिर और बाल दोनों एक दूसरे से अलग न हों, जहाँ रहें दोनों साथ ही रहें।"

किशोरी बड़ी सीधी लड़की थी। उसका यह आर्त-नाद माता से सहा न गया। उसने कैंची एक ओर फेंक दी और

कहा—"अब तो यह दुख देखा नहीं जाता ! धर्म रहे या जाय—मैं अपनी अकेली बेटी को दुःखी न रक्खूँगी। भगवान् ने उसे विधवा बना दिया है; पर मैं उसे विधवा न बनाऊँगी। जब तक मैं जिऊँगी, वह सधवाओं की ही भाँति रहेगी, खायगी, पहनेगी और आदर पायेगी।"

पति का पुनर्जन्म

१

लक्ष्मीनारायण तिवारी उन आदमियों में से थे जो स्त्रियों को सब प्रकार की स्वतन्त्रता देना चाहते हैं। पर उनकी ही स्त्री किसी प्रकार स्वतन्त्र होने को तैयार न थी। ऐसे विरोधी विचारों के कारण पति-पत्नी में प्रायः खटपट हो जाती थी। दोनों एक दूसरे का सुधार करने के लिए नाना प्रकार के उपायों का अवलम्बन करते रहते थे; पर सफलता दोनों से बहुत दूर थी।

उन दिनों विधवा-विवाह की चर्चा चारों तरफ़ खूब फैल रही थी। कोई उसका खंडन करता था, कोई मंडन। लक्ष्मीनारायण तिवारी की, दो आदमियों की, छोटी सी गृहस्थी में दो दल हो गये। इसका फल यह हुआ कि रात-रात

भर विधवा-विवाह पर पति-पत्नी में बहस होने लगी। अन्त में एक दिन तिवारीजी ने चिढ़कर कह दिया—"सधवा हो, जो चाहो कह लो; पर यदि तुम भी विधवा होगी तो फैसला हो जायगा।"

यह सुनते ही तिवारीजी की स्त्री श्यामा की आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े। उसका चेहरा उदास हो गया। थोड़ी देर चुप रहकर वह बोली—"ईश्वर न करे! पर यदि ऐसा होगा तो मैं यह सिद्ध कर दूँगी कि विधवा को विधवा ही रहना उचित है।"

तिवारी जी निरुत्तर हो गये।

२

उपरोक्त घटना के तीन ही महीने बाद समाचार आया कि लक्ष्मीनारायण तिवारी का हरद्वार के मेले में हैजे से स्वर्ग-वास हो गया। तिवारीजी प्रति वर्ष हरद्वार के मेले में पुस्तकों की एक दूकान लेकर जाया करते थे। इस बार भी वे उसी प्रकार गये थे। कौन जानता था कि यह उनकी अन्तिम यात्रा होगी। श्यामा गला फाड़-फाड़कर रोने लगी। सारे गाँव में कुहराम छा गया।

एक ही हफ़्ते बाद श्यामा का रूप-रंग सब बदल गया। दूसरे हफ़्ते में उसे भूषण आदि सब उतार देने पड़े, उसकी चूड़ियाँ तोड़ दी गईं, उसका शृङ्गारदान गङ्गा में बहा दिया

गया, उसकी सुन्दर-सुन्दर साड़ियाँ बेच दी गईं। अब वह विधवा थी। विधवा को सांसारिक वस्तुओं से क्या प्रयोजन ?

धीरे-धीरे एक साल हो गया। अब लक्ष्मीनारायण तिवारी को सब लोग भूल गये। हाँ, श्यामा उन्हें नहीं भूली। उसे मालूम होता था, मानों पति उसकी परीक्षा लेने के लिए अन्तर्धान हो गये हैं। समय पर फिर मिल जाँयगे। पर उसकी यह भावना बादल की छाया के समान चलायमान थी। इससे उसे संतोष न होता था।

लक्ष्मीनारायण के माता-पिता पहले ही मर चुके थे। घर में और कोई नहीं था। इसलिए श्यामा को अपने बाप के यहाँ जाना पड़ा। श्यामा के तीन बड़े भाई भी थे। तीनों का विवाह हो चुका था। तीनों की बहुएँ आ चुकी थीं। इन बहुओं को श्यामा भारस्वरूप मालूम पड़ती थी। तीनों आपस में प्रायः कहा करती थीं—"क्या जाने, यह राँड़ कब दूर होगी !" घर का सब काम-काज श्यामा ही करती थी। फिर भी उसे पेट-भर रोटी देने के लिए कोई हृदय से तैयार न था।

अब श्यामा को मालूम हुआ कि हिन्दू विधवा का जीवन बड़ा ही सङ्कटमय है। पति ही की चिन्ता नहीं, उसके सिर पर भोजन की चिन्ता का भी भार है। फिर

वह समाज में अनिष्ट की सूचना सी समझी जाती है। उसकी पवित्रता का और उसकी तपस्या का जरा भी मूल्य नहीं है।

जो बात एक समय ठीक नहीं जँचती वही दूसरे समय बहुत सुन्दर जान पड़ती है। श्यामा के पति स्त्रियों की स्वतन्त्रता की बात किया करते थे, अब श्यामा को वह ठीक जँचने लगी। आह ! यदि वह मजदूरी भी करने पाती, तो इस प्रकार नासमझ भौजाइयों की बातें न सहनी पड़तीं।

३

बड़ी भौजाई ने कहा—"इस प्रकार तो काम नहीं चलेगा कि तुम जहाँ चाहोगी, चली जाओगी।"

श्यामा ने उत्तर दिया—"और तुम क्यों, जहाँ चाहती, चली जाती हो ?"

"मैं सधवा हूँ, मुझे कोई कुछ नहीं कह सकता—इसीलिए !"

श्यामा ने अपना सिर नीचा कर लिया और मन ही मन कहा—"आह ! मेरे स्वामी ! तुम बहुत ठीक कहते थे। हिन्दू धर्म, आजकल का हिन्दू धर्म, ऐसा है कि इसमें विधवाओं का बड़ा अपमान है, उनका बड़ा अनादर है, शायद इसीलिए तुम विधवा-विवाह की बात सोच रहे थे।"

यह कहते कहते श्यामा की आँखें भर आईं।

४

आज गाँव में एक बाबाजी आए थे। वे मृतक आत्माओं से बातचीत करवाने के लिए मशहूर हो रहे थे।

श्यामा यह समाचार सुनते ही अपने पति की आत्मा से बातचीत करने के लिए व्याकुल हो उठी। उसे मालूम था कि वह अपनी भौजाइयों से बिना पूछे कहीं जा नहीं सकती। पर इस शुभ काम में उसने किसी से पूछना उचित न समझा। वह छिपकर घर से बाहर हो गई।

बाबाजी के पास पहुँचकर उसने देखा कि वे उसे देखते ही कुछ उदास हो गये हैं। उसने सोचा, बड़े दयालु बाबा हैं। श्यामा ने फौरन उन्हें प्रणाम किया। बाबाजी बोले—"देवी, अपने पति की आत्मा से बातचीत करने आई हो क्या ?"

"हाँ, महाराज !" कहकर श्यामा ने आँसू की दो बूँदें गिरा दीं।

यह दृश्य देखते ही बाबाजी की भी काली काली मूँछों पर दो मोती आ गिरे, उन्हें अपनी विद्या का ध्यान न रहा।

बाबाजी जब इस प्रकार बेसुध हो गये, तो श्यामा उनकी ओर देखने लगी। देखते ही देखते उसकी आँखें उन पर जम गईं; और उसे ऐसा मालूम हुआ, मानों बाबाजी के

रूप में उसके चिरपरिचित स्वर्गीय पति बैठे हैं! वह आश्चर्य्य-चकित जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई।

५

जब श्यामा के पिता ने सुना कि उनके दामाद फिर से प्रकट हो गये हैं तो उन्हें बड़ी खुशी हुई। वे भी फौरन घटनास्थल पर पहुँचे। उस समय श्यामा में और बाबाजी में इस प्रकार बातें हो रही थीं:—

"मैं तुम्हारा पति हूँ; पर तुम्हारे लिए मर चुका हूँ।"

"मैं तो तुम्हें मनुष्य के रूप में देख रही हूँ।"

"यह दूसरा शरीर है।"

"कोई परवाह नहीं।"

"तो तुम इस शरीर के साथ अपना विधवा-विवाह करने के लिए राजी हो।"

थोड़ी देर सोचकर श्यामा ने कहा—"हाँ!"

यह सुनते ही बाबाजी ने श्यामा को खींचकर छाती से लगा लिया और कहा—"प्यारी! मैं मरा नहीं था। तुम को केवल यह दिखलाने के लिए कि विधवाओं की कैसी दुर्दशा है, तथा स्त्रियों के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता की कितनी आवश्यकता है, मैंने अपने को मरा मशहूर कर दिया था।"

श्यामा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी आखों से आँसू

की धारा बह रही थी; और वह अपने हाथों से पति के कुरते के खुले बटन बन्द कर रही थी !

मौसी

१

सुभागी एक गरीब बनिये की लड़की थी। अतएव उसे अच्छा अच्छा खाने को और अच्छा अच्छा पहनने को कभी न मिला था। पास-पड़ोस की लड़कियों को खाते-पीते और पहनते-ओढ़ते देखकर वह अपनी माँ से प्रायः लड़ने लगती। जब माँ समझाते समझाते थक जाती और सुभागी न मानती तो वह कहती—

"बेटी, हम गरीब हैं, हमारे पास कुछ नहीं है। जब तुम ससुराल जाओगी तो तुम्हारा दूल्हा तुम्हें खूब पहनने-ओढ़ने को देगा। जब तक ब्याह नहीं होता, तब तक धैर्य धरो।"

यह बात सुनकर सुभागी के दिल में एक प्रकार की गुदगुदी सी पैदा होती, वह लजा जाती, चुप हो जाती और उसके रुदन से मैले हुए होंठ एक दबी मुस्कुराहट से स्वच्छ हो जाते।

पर सुभागी की यह इच्छा ससुराल में भी पहुँचकर पूर्ण न हुई। होती कैसे! गरीब की बेटी का ब्याह भी तो गरीब ही के घर में हो सकता है।

सुभागी का पति मातादीन उसके बाप से भी अधिक गरीब था। एक गाँव में स्कूल-मास्टर था। सिर्फ आठ रुपये महीने तनख्वाह पाता था। हिन्दी मिडिल पास करके नौकर हुए दो ही महीने हुए थे कि उसका ब्याह हुआ था। उसकी विधवा माँ ने कुटाई-पिसाई करके पचास-साठ रुपये इकट्ठे किये थे, सो सब खर्च हो गये थे। अब घर में एक पैसा भी न था। इधर मातादीन ने माँ का कुटाई-पिसाई करना भी रोक दिया; क्योंकि अब वह सयाना हो गया था, उसके घर में बहू आ गई थी—ऐसी दशा में माता का कुटाई-पिसाई करना उसकी इज्जत के खिलाफ था। वह पहले भी सोचा करता था कि जब मैं नौकर हो जाऊँगा तो माता को किसी के घर में जाकर मजदूरी न करनी पड़ेगी। उसकी यह इच्छा बहुत दिनों में पूर्ण हुई थी। इसलिए वह बहुत खुश था।

२

बेटी के ब्याह के ठीक दो महीने बाद सुभागी के पिता ने गाँव की नाइन से सुना कि उसकी लड़की को ससुराल में बड़ी तकलीफ है। नाइन ने मुँह मटकाकर कहा—"सुभागी के

बाप ! तुम किस मक्खीचूस के यहाँ बेटी का ब्याह कर आये हो ? कहने को तो वह नई दुलहिन है; पर ऐसा जान पड़ता है मानों जनम की राँड़ हो—मुझसे तो उसका दुख देखा नहीं गया। ऐसी ब्याही से तो कुँवारी अच्छी !"

एक पड़ोसिन बोली—"उसे कहीं सुख नहीं मिल सकता। यहीं बेचारी को कौन सा सुख था। ऐसी ब्याह दी, मानों सौत की लड़की हो !"

सुभागी की माँ बोली—"हम गरीब हैं। गरीब के लड़कों को खाने-पहनने का सुख कभी नहीं मिल सकता। पर यह नहीं जानती थी कि उसका ब्याह भी दलिद्दर के ही यहाँ होगा।"

सुभागी का बाप, जो यह सब बातें चुपचाप सह रहा था, अब आपे से बाहर हो गया। उसने गुस्से से काँपकर कहा—"दरिद्र तो नहीं है, स्कूल में मास्टर है, आठ रुपया तनख्वाह पाता है, साँड़ सी शकल है, और अब क्या चाहिए ? पर मैं जानता हूँ, उसका कसूर नहीं हो सकता—यह सब उसकी माँ का फसाद होगा। वह बड़ी दुष्टा है। अभी मैं जाकर उसको ठीक करता हूँ।"

यह कहता हुआ सुभागी का बाप पगड़ी बाँध हाथ में सोंटा ले घर से बाहर निकल पड़ा। बनैनी ने समझाया कि गुस्से में कोई काम नहीं करना होता। अभी ठहर जाओ। पर वह उन आदमियों में से था जो औरतों की अनुनय-विनय

सुनकर और भी उत्तेजित होते हैं। देखते ही देखते वह आँखों से ओझल हो गया। नाइन ने संतोष की साँस ली।

मातादीन का घर डेढ़ मील के फासले पर एक दूसरे गाँव में था। वहीं पहुँचकर सुभागी के बाप ने दम ली।

बाप को पाते ही सुभागी उसके पैरों से लिपट फूट-फूटकर रोने लगी—"हाय ! हाय ! मैं पैदा होते ही मर क्यों न गई ! ब्याह होते ही राँड़ क्यों न हो गई ! इस ससुराल में आग क्यों न लग गई ! हाय ! माई हाय !"

उस समय सुभागी की सास एक पड़ोसी के घर में गई थी। बहू का रोना सुनकर अपने घर दौड़ी आई। उसे देखते ही सुभागी का बाप उठकर खड़ा हो गया और बोला—"बिटिया, रोओ मत ! उठो मेरे साथ चलो ! समझूंगा कि तुम राँड़ हो गई हो !"

मातादीन की मां ने कहा—"समधीजी ! मुझ से कोई कसूर तो नहीं हुआ ! इतना खफा क्यों हो रहे हो ?"

सुभागी के बाप ने कहा—"कसूर नहीं हुआ ! मारा मेरी बेटी का प्राण ले लिया और कहती हैं कसूर नहीं हुआ ! देखो न ! उसकी हड्डी हड्डी दिखाई देने लगी, सिर में कभी तेल भी नहीं लगा। तुम जन्म की दरिद्र हो न ? इसी से। आठ रुपिल्ली तो लड़का पाता ही है, उसको भी गाड़-गाड़कर रखने का शौक होगा ! मैं इस तरह खर्च की तङ्गी सहता, तो

राजा हो जाता। अच्छी तरह खाने-पहनने को भी न मिले तो कोई जिन्दगी है!"

मातादीन की माँ ने समधी के पैरों पर मस्तक रख दिया और गिड़गिड़ाकर कहा—"अब समझ गई! कसूर हुआ!! माफ करो!!!"

इसके बाद वह न बोल सकी। उसका गला रुँध गया। धीरे धीरे सुभागी के बाप का गुस्सा कम हुआ। उसने इधर-उधर देखा। अपनी पगड़ी ठीक की और वापस लौट गया।

३

मातादीन आठ मील के फासले पर एक दूसरे गाँव में पढ़ाने जाता था और हफ्ते में एक बार हर इतवार को घर आता था। इस बार वह आया तो माता को बहुत उदास पाया।

उसने समझा, शायद खर्च खतम हो जाने से मां चिन्तित होंगी। उसे तनखाह मिल गई थी। इसलिए उसने जेब से आठों रुपये निकालकर मां के चरणों के पास रख दिये; और कहा—"यह लो मां! चिन्ता मत किया करो।"

मां ने बहुत प्रेम से रुपये गिने। उन्हें बजाया। बेटे की कमाई थी, इसलिए उन्हें एक एक करके चूमा। इसके बाद कहा—"बेटा, अब यह रुपये बहू को रखने को दे दो—वही जैसे चाहेगी, खर्च करेगी।"

मातादीन—"क्यों?"

माँ—क्योंकि मेरा कुछ ठिकाना नहीं, आज मरूँ कि कल! आखिर बहू को तो यह सब रखना ही होगा। मेरे सामने ही से वह धरने-उठाने लगेगी तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

मातादीन को माँ की बात पसन्द आ गई। उसने सुभागी के पास जाकर उसके हाथ में रुपये रख दिए। पर सुभागी ने त्योरी चढ़ाकर अभिमान के साथ उन रुपयों को आँगन में फेंक दिया। सब रुपये झन-झन करके इधर-उधर बिखर पड़े।

मातादीन अवाक् सा खड़ा रह गया। उसका हृदय फट गया। उसे ऐसा जान पड़ा मानों उसके प्रेम को सुभागी ने लात से ठुकरा दिया। उसने सोचा था कि पति के कमाए हुए रुपये पाकर सुभागी प्रसन्न होगी। पर उसकी आशा पर बिलकुल पानी फिर गया। उसकी समझ में न आया कि सुभागी ने उसके रुपयों का तिरस्कार क्यों किया? जिन रुपयों को माँ ने चूमचूमकर गिना था उन्हीं की यह दशा! उसकी कुछ बोलने की हिम्मत न हुई। उसने बिखरे रुपयों को फिर इकट्ठा किया और उन्हें—यह तमाम दृश्य देखती हुई—माता के अञ्चल में बांधकर घर से बाहर अपने मित्रों से मिलने चला गया।

मातादीन के जाने के बाद सास ने सुभागी को समझा-

कर रुपये सौंप दिये और उससे कहा—"बहू, इसमें किफायत से खर्च करना। घर में खर्च करने के बाद जो बचेगा, वह तुम्हारा है। साल दो साल में कुछ रुपये इकट्ठे हो जायँगे तो तुम्हें कोई गहना बनवा दूँगी। बताओ! कौन सा गहना बनवाओगी?"

गहने का नाम सुनकर सुभागी कुछ प्रसन्न हुई और बोली, "करधन।"

सास ने कहा—"बहुत अच्छा! घीसू की बहू की करधन बनी है, चार अंगुल चौड़ी है, तौल में भी भारी है और तीस ही रुपये कुल दाम लगे हैं। तीस रुपया इकट्ठा कर लो—बस, तुम्हें भी करधन बनवा दूँगी।"

४

मातादीन अपनी बहू के बारे में अक्सर सोचा करता। वह चाहता था कि वह बहू को प्यार करे और बहू उसको प्यार करे और दोनों उपन्यास की भाषा में अपना प्यार व्यक्त करें। पर गहने और कपड़े की प्रेमिका सुभागी ने इसमें सहयोग न किया। एक दिन मातादीन ने कहा—"सुभागी, तुम जानती नहीं हो कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ!"

सुभागी—"चलो, रहने दो! प्यार करते तो मैं इसी तरह रहती! एक-दो पैसे का ज़ेवर भी तो मुझे नहीं बनवाया!"

मातादीन—"प्यारी! मैं गरीब हूँ। गरीब के पास ज़ेवर कहाँ है!"

सुभागी—"गरीब हो तो ब्याह क्यों किया था?"

मातादीन—"जानता था कि तुम मुझे प्यार करोगी—इसी लिए!"

सुभागी—"मैं तो प्यार करती हूँ; पर तुम नहीं करते हो।"

मातादीन—"अपना कलेजा तुम्हें चीरकर कैसे दिखाऊँ!"

सुभागी—"मैं कलेजा नहीं देखना चाहती।"

मातादीन—"अच्छा, जो आदमी अपनी स्त्री को गहने नहीं दे सकता, क्या वह प्यार के लायक नहीं है?"

सुभागी—"नहीं।"

मातादीन—"तो तुम मुझे प्यार नहीं करती हो?"

सुभागी—"नहीं।"

मातादीन—"अच्छा तो तुम किसे प्यार कर सकती हो?"

सुभागी—"जो अच्छी तरह खिलावे, पहनावे।"

मातादीन—"तो तुम्हारा प्यार वेश्याओं का प्यार है। पर क्या तुम गहने और कपड़े के लिए वेश्या हो सकती हो?"

सुभागी—"जब तुम्हारी ऐसी चाल है, तो मुझे न मालूम क्या होना पड़ेगा।"

मातादीन—"मैं मर जाऊं तो ?"

सुभागी—"तो मेरा क्या बिगड़ेगा ! जैसी नङ्गी अब हूँ तैसी तब भी रहूँगी।"

मातादीन—"और मैं समझता था, तुम सती हो जाओगी।"

सुभागी—"सती हो तुम्हारी माँ ! अब मुझ से बहुत कहलाओ मत !"

इसी प्रकार जब जब मातादीन प्रेम-चर्चा शुरू करता, सुभागी जली-कटी बातें कहकर उसका जी दुखाया करती। मातादीन को अपने आप पर बड़ा गुस्सा आता। वह अपना मस्तक ठोंककर रह जाता और मन ही मन कहता—"आह ! मुझ से बड़ी भूल हुई ! जो वस्त्र, भोजन और अलङ्कार आदि से स्त्री को सन्तुष्ट नहीं रख सकता, उसको ब्याह करने का अधिकार नहीं !"

५

कुछ महीने बाद तीस रुपये इकट्ठे हो गये और मातादीन की माँ ने सुभागी के लिए एक सुन्दर करधनी बनवा दी। करधनी पहनकर सुभागी अपने पिता के घर गई। पर इस बार का जाना उसका आखिरी जाना था। मातादीन कई बार बुलाने गया, उसकी माँ बुलाने गई, पर सुभागी लौटकर न आई। वह हमेशा यही जवाब देती रही—"तुम्हारे यहाँ

क्या है ! चूहे मारने चलूँ ? कौन सा मुँह लेकर मुझे बुलाने चले हो ! गाँठ में छदाम नहीं और रक्खेंगे परी ही !"

लाचार होकर मातादीन बैठ रहा। दो-तीन महीने बाद उसके पास यह समाचार आने लगे कि अब उसकी स्त्री खूब सजधज कर रहती है, नित्य नया वेश बदलती है, पान खाती है, सोने-चाँदी के गहने पहने जिस गली से निकल जाती है, उधर ही चकाचौंध हो जाता है; और लोग देखते ही रह जाते हैं !

अन्त में मातादीन ने एक बार और हिम्मत करके यह सन्देश कहला भेजा कि यदि उसकी स्त्री वापस न आना चाहे तो साफ साफ कह दे, ताकि वह अपना दूसरा ब्याह कर ले। दूसरे दिन जवाब आ गया कि चाहे जो कर लें, चाहे कलेजा फाड़कर मर जायँ, सुभागी से कोई मतलब नहीं !

मातादीन अपना ब्याह नहीं करना चाहता था। पर माँ के अनुरोध से, और सुभागी को यह दिखाने के लिए कि मुझ गरीब को भी कोई स्त्री प्यार कर सकती है, उसने अपना दूसरा ब्याह कर लिया। नये ब्याह के बाद उसने नवबधू से कहा—"प्यारी ! मैंने सुना था कि तुम गरीब की लड़की हो, तुमने कभी अपने बाप से गहने नहीं माँगे, इसी से मैंने तुम्हारे साथ ब्याह किया है। मैं भी गरीब हूँ और मेरे पास कुछ

देने को नहीं है। पर मुझे विश्वास है कि तुम मुझे प्यार करोगी ! मुझ से गहने के लिए न लड़ोगी ! क्यों ?"

नवबधू ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया। उसकी आँखें डबडबा आईं। पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन दूध का जला मट्ठा भी फूँक-फूँककर पीता है। इस लिए मातादीन नवबधू से रोज रोज वही बात पूछा करता। एक दिन उसने कहा—"तुम बने रहो ! तुम्हीं मेरे गहने हो।"

मातादीन ने उसे अपने और पास खींच लिया। नवबधू उसकी गोद में सिर रखकर बोली—"मुझे हमेशा ऐसे ही प्यार करोगे ?"

मातादीन ने कहा—"हाँ, पर गहना तो न माँगोगी ?"

स्त्री बोली—"नहीं।"

मातादीन ने उसके आँसू से भीगे गाल पर एक प्रेम का चुम्बन अंकित कर दिया और कहा—

"सुभागी तुम हो, वह अभागी थी।"

६

उपरोक्त घटना को बीते सोलह साल हो गये। अब मातादीन की माँ नहीं है; पर उनके घर में कितने ही लड़के-लड़कियाँ हो गई हैं। अब उनकी तनख्वाह बढ़कर बीस रुपये हो गई है। और उन्होंने थोड़ी सी खेती भी कर ली है। उनके दिन बड़े मजे में बीत रहे हैं।

एक दिन, जब मातादीन घर पर नहीं थे, उनके यहाँ एक भिखारिणी आई। उसके पैरों पर जमी गर्द से जान पड़ता था कि वह बहुत दूर से चलकर आई है। गृहिणी को सम्बोधन करके उसने कहा—"मातादीन का घर यही है ?"

गृहिणी ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

भिखारिणी—"तुम उनकी स्त्री हो ?"

गृहिणी—"हाँ।"

भिखारिणी—"मैं तुम्हें कुछ दूँ तो ले सकती हो ?"

गृहिणी—"नहीं !"

भिखारिणी—"क्यों ?"

गृहिणी—"मेरा जी यह कहता है कि मैं संसार को अपना सब कुछ दे दूँ; पर मैं किसी की कोई चीज न लूँ।"

भिखारिणी—"तो तुम मुझे एक चीज दे सकती हो ?"

गृहिणी—"हाँ, क्या ?"

भिखारिणी—"अपने पैरों की धूल !"

गृहिणी—"ऐं ! कैसी बातें करती हो ! असल में तो तुम्हारे पैर की धूल मुझे लेनी चाहिए; क्योंकि तुम तीरथ करके आई जान पड़ती हो। लाओ, पैर बढ़ाओ।"

भिखारिणी—"हैं, हैं ! मुझे छूना मत।"

इसी समय मातादीन ने गृह में प्रवेश किया। भिखारिणी

ने पोटली खोली और एक चाँदी की सुन्दर करधन निकालकर उनके पैरों पर रख दी!"

मातादीन ने चौंककर कहा—"कौन? सुभागी!"

सुभागी—"हाँ, देवता।"

मातादीन—"ऐं, तुम मुझे देवता क्यों कहती हो?"

सुभागी—"क्योंकि तुम देवता हो! सचमुच देवता हो।"

मातादीन—"तुम्हारी यह दशा कैसे हो गई है? अब तुम्हें कोई नहीं चाहता? कोई गहने नहीं देता? इसीसे मेरे पास आई हो! अच्छा बोलो, क्या क्या लोगी? तब तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं कर सका था, इस बात का मुझे अब तक अफ़सोस है।"

सुभागी—"नाथ! मुझे अपने पापकर्मों का फल मिल चुका। अब मुझ में कोई इच्छा बाकी नहीं है। अब यही चाहती हूँ कि मर जाऊँ। मरने से पहले यह चाहती थी कि तुम्हारी स्त्री को यह करधनी दे दूँ। क्योंकि यह तुम्हारी कमाई है। यह तुम्हारी माता के असीम प्रेम से बनी है। इसके लिए उन्हें हर दूसरे दिन उपवास करना पड़ा था। मैं यह तुम्हारे घर में फेंककर चली जाना चाहती थी कि तुम आ गये। मैं तुम्हें अपना मुँह दिखाना नहीं चाहती थी।"

इसके आगे वह बोल न सकी।

मातादीन ने कहा—"तुम्हारी यह दशा क्यों हुई?"

सुभागी—"इसे सुनकर क्या करोगे? यह लम्बी कहानी है। तुम्हारे सिवाय मुझे जितने आदमी मिले, सब धोखेबाज़ मिले। गहने-कपड़े सब ने दिये; पर अपना प्रेम किसी ने नहीं दिया। प्रेम देनेवाले केवल तुम्हीं थे। पर तब मुझे उस प्रेम का महत्व मालूम न था।"

मातादीन—"पर अब मैं तुम्हें अपना प्रेम नहीं दे सकता।"

सुभागी—"जानती हूँ, अब मुझसे वह उतनी ही दूर है जितना पहले यह करधन थी। अब इस करधन को अपनी स्त्री को पहना दो। यह तुम्हारी चीज़ है।"

मातादीन ने कहा—"और तुम भी तो हमारी चीज़ हो।"

सुभागी चुप हो रही। मातादीन की गृहिणी बिल्कुल करुणा की मूर्त्ति थी। उसने सुभागी से कहा—"अच्छा नहा-धोकर साफ़ कपड़े पहनकर यह करधन मुझे पहना दो।"

सुभागी ने ऐसा ही किया। तब मातादीन की दूसरी स्त्री ने सुभागी का हाथ पकड़कर कहा—"बहिन सुभागी, दिन भर का भूला अगर शाम को वापस आ जाय तो उसे भूला नहीं कहते। चलो, भोजन करो।"

अब सुभागी मातादीन के बच्चों को खेलाती है और बच्चे उसे मौसी कहते हैं।

———

गणेश की मां

"अम्मा ! अब तो मारे सर्दी के रहा नहीं जाता।"

"बस बेटा, अब थोड़ी सी रात और है।"

"नहीं अम्मा ! आज सबेरा न होगा।"

"होगा क्यों नहीं लाल !"

"क्या मैं मर जाऊंगा तब होगा !"

उपरोक्त बातें एक आठ बर्ष के बालक और उसकी मां में हो रही हैं। मां की अवस्था इस समय तीस वर्ष के क़रीब है, पर चिन्ता और भूख-प्यास इत्यादि मानसिक तथा शारीरिक कष्टों ने उसे बिल्कुल बुढ़िया सा बना दिया है। अब उसकी दशा, और वह बे-मरम्मत झोंपड़ी, जिसमें वह रहती है, देख-कर कोई यह अनुमान भी नहीं कर सकता है कि इस दुखिया ने भी कभी अच्छे दिन देखे हैं।

बच्चे के मुख से यह सुनकर कि क्या मेरे मरने पर ही सबेरा होगा, उसकी आंखों में आँसू भर आये। उसने अपने बच्चे को हृदय से चिपटा लिया। इसी बीच में बादल का गरजना भी सुनाई पड़ा और साथ ही ओलों की भी झड़ी लग गई। एक बड़ा सा ओला झोंपड़ी को चीरता हुआ बालक के सिर पर आ गिरा। बालक ने कहा—"अम्मा ! बस अब न बचूंगा"।

माता बोली—"चुप रहो बेटा, ऐसा नहीं कहना होता। एक वह भी दिन था जब तुम कूद-कूदकर इन्हीं ओलों को खाते थे। क्या तुम को याद नहीं है—आज ही कल का तो मौसम था। अब तुम्हारे पिता......।"

मां इससे आगे न बोल सकी। पर पिता का नाम सुनते ही बालक ने कहा—"हां अब दद्दा कब आयेंगे ?"

माता—"ईश्वर जाने बेटा ! लड़ाई छिड़े आज दो साल से अधिक हो गये। जब से गये, उनकी कोई ख़बर ही नहीं मिली। कोई कहता है, दुश्मन ने उनको क़ैद कर लिया, कोई कहता है, वह जहाज़ ही डूब गया जिसमें वे जा रहे थे।"

बालक—"अम्मा ! वे हमको अकेला छोड़कर गये क्यों? क्या वे हम को प्यार नहीं करते थे ?"

माता—"क्या करते बेटा ! उस साल चम्बल में बाढ़ आई। हमारे दोनों बैल खेत में बँधे थे, बह गये। तुम्हारे दद्दा भी बह जाते; पर उनको तैरना आता था। मैं तुमको लेकर इसी नीम के पेड़ पर, जिस की घनी छाया अब भी हमारी सर्दी बहुत कम कर रही है, चढ़ गई थी। बाढ़ के बाद खेती नहीं हो सकी। लगान भी अदा न हो सकने के कारण खेत बेदख़ल हो गया। उस समय फ़ौज में भर्ती खूब हो रही थी। लाचार होकर तुम्हारे पिता को नौकरी करनी पड़ी।

छै महीने तक उनकी चिट्ठी भी आई । और हर महीने कुछ न कुछ रुपया भी आ जाता था । पर अब कुछ भी पता नहीं ।"

मां इतना ही कह पाई थी कि वायुदेव ने अपनी चाल तेज की । एक प्रबल पवन का झोंका आया और छप्पर उलट-कर चला गया । नीम का पेड़ हिलने लगा और उसकी पत्तियों पर रुकी हुई पानी की बूंदे छप्परहीन झोंपड़े पर कूद-कूदकर क्रीड़ा करने लगीं । माता अपनी गोद में बालक को लेकर बैठ गई । उसे मालूम हुआ, मानो हवा कह रही है—

"जिसके पति पर गोलियों की वर्षा हो रही है, उसके लिए पौष में पानी की बूंदों में रात बिताना कोई विशेष कार्य्य नहीं है ।"

(२)

सबेरा हुआ । आसमान साफ हो गया । सूर्य्यदेव ने पुनर्वार, धूप की लालसा में बड़ी देर से बैठे हुए, गणेश को दर्शन दिया । धीरे धीरे उसके आसपास बालकों की एक मण्डली जमा हो गई । गणेश की माता अपना छप्पर बनाने लगी । धीरे धीरे गणेश का काँपना बन्द हुआ । अब उसे भूख मालूम हुई । वह दौड़ा हुआ माता के पास गया; परन्तु वहाँ रक्खा ही क्या था ! एक मिट्टी के बर्तन में थोड़े से नमक के सिवाय घर में और कोई वस्तु शेष न थी । माता की आँखों में आँसू भर आये । गणेश को मालूम हो गया कि आज फिर एकादशी

है । काल के अनुसार मनुष्य के स्वभाव में भी परिवर्तन हो जाया करता है । गणेश पहिले जो वस्तु देखता था उसी के लिए मचल जाता था—वही गणेश अब भोजन न मिलने पर भी चुप रह जाता है माता को रोता देख उसने कहा—"अम्मा ! अच्छा अब कभी रोटी न मागूंगा । तू चुप हो जा ।" माता और जोर से रोने लगी ।

ठीक इसी समय एक भिखारिनी उधर से निकली । उसने गणेश की सारी बातें सुन ली थीं । अतएव वह वहीं बैठ गई । उसने अपनी पोटली खोली । उस में तीन बड़ी बड़ी पूड़ियाँ रक्खी थीं । उनको निकालकर वह गणेश को देने लगी—गणेश ने भी आँखों में आँसू भर-भर अपना हाथ बढ़ा दिया । परन्तु माता ने कहा—"बेटा, ठहरो ।" फिर उसने भिखारिनी से कहा—"बहिन, तुम्हारी सहृदयता की सराहना जितनी की जाय, थोड़ी है । परमात्मा तुम्हारा ही जैसा हृदय सब को दे । परन्तु तुम जहाँ से ये पूड़ियाँ लाई हो, वहाँ मैं आदर के सहित निमंत्रित किये जाने की बाट देख रही थी । वे हमारे आत्मीय हैं । कल उन्होंने सारे गांव को बुलाया । खूब धूमधाम रही । मेरा लड़का कई बार उनके घर की तरफ होकर निकला भी; पर उन्होंने पूछा तक नहीं । उनकी पूड़ियां अब वह नहीं खा सकता ।"

भिखारिनी ने कहा—"अपनी दशा भी देखती हो !

अकड़ के साथ वही रह सकता है जिस को परमात्मा ने खाने और पहिनने को काफी दिया हो।"

गणेश की मां—"मैं यह समझती हूँ। पर टुकड़े मांग मांगकर खाने से मैं मर जाना अच्छा समझती हूँ। इसमें हमारा अपमान है। अभी तक जिस प्रकार बीता है, उसी प्रकार किसी न किसी तरह यह नाव किनारे लग ही जायगी।"

भिखारिनी—"तुम्हारी नाव लग जाय या डूब जाय, मुझे इसकी परवाह नहीं; परन्तु इस बेचारे अबोध बालक की नाव कहां लगेगी?"

गणेश की मां—"जहां ईश्वर लगायेगा। आज तक उसे भी किसी का मुँह नहीं ताकना पड़ा। अब यदि यही ईश्वर की इच्छा होगी तो मां-बच्चे दोनों मर जायँगे। पर मांगेंगे नहीं; और न अपमान सहेंगे।"

भिखारिनी—"मैं तो तुमको बिना मांगे ही देती हूँ।"

गणेश की मां—"हां बहिन, तुम्हारी इस कृपा से दबी जा रही हूँ। मैं तुम्हारे चरणों की धूल तक पी जाने के लिए तैयार हूँ। पर यह अभिमानी का अन्न है, वह हम को तुच्छ समझता है, अतएव मेरे बच्चे के खाने योग्य नहीं है।"

भिखारिनी ने एक ठंडी साँस ली। वह कुछ कहना ही चाहती थी कि एक वयस्क स्त्री पूड़ियों से भरी हुई एक टोकरी लेकर वहाँ आई; और बोली—"गणेश की माँ!

बहुत सा पकवान बच गया है। मालिक का हुक्म हुआ है कि इसे ग़रीबों को बाँट दिया जाय। लो, तुम भी अपना हिस्सा ले लो।"

गणेश की माँ ने कहा—"हम कुत्ते नहीं हैं। उन्हीं की भाँति हम भी बड़े आदमी हैं। इज्जत के साथ बुलाये जाते तो अवश्य खाते और उनको आशीर्वाद देते। अब यह बचा-खुचा मुझे न चाहिए।" वह स्त्री कुछ गुनगुनाती हुई जिधर से आई थी, उसी ओर चली गई।

३

शाम को जब पंडित कमठनारायण घर लौटे और सुना कि कृपाशंकर की स्त्री ने उनकी दक्षिणा स्वीकार नहीं की, तो वे आग-बबूला हो गये, उसी दम घर से चल पड़े। उन्होंने निश्चय किया कि आज उस अभिमानिनी स्त्री की आदत छुड़ाये बिना पानी न पीऊँगा। गृहिणी ने बहुतेरा रोकना चाहा, पर वे न रुके। हाथ में कोड़ा लिये हुए गणेश की झोपड़ी के निकट आ पहुँचे।

भिखारिनी कुछ आटा माँगकर गणेश के लिए रख गई थी। माँ आग जलाकर अपने प्यारे बच्चे के लिए दो रोटियाँ सेंक देने की फिक्र में थी। उधर गणेश कहता था—"मां! कच्चा ही आटा दे दे। सब उड़ा जाऊँगा। बड़ी भूख लगी है।" गणेश की बात सुनकर कमठनारायण

को दया आ गई। अतएव वे आते ही कोड़ों की वर्षा करने में समर्थ न हुए। गणेश की माँ कमठ को देखते ही दीवाल की आड़ में छिप गई। वह आज तक अपना झोपड़ा छोड़कर कहीं न गई थी। और न किसी के सामने से होकर निकली थी।

कमठ ने कहा—"अभी तक पंडितानी ही बनी है! हमारा मुक़ाबिला करने चली है। 'रहै झोपड़ी में ख़्वाब देखै महलों का' इसी को कहते हैं।" धीरे धीरे गाँववालों की अच्छी भीड़ एकत्रित हो गई। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। गाँव के पुरोहितजी भी उसी अवसर पर आ गये। उन्होंने कहा—

"बराबर सों ही कीजिये, ब्याह बैर अरु प्रीति।"

कमठ ने कहा—"आज इस अभिमानिनी ब्राह्मणी को मैं भंगी का जूठा खिलाये बिना न रहूँगा।"

एक भंगी बुलाया गया; और वह कमठ के घर से उसी समय मँगाई गई पूड़ियों पर हाथ साफ करने लगा। गाँववाले चुपचाप खड़े रहे। न किसी ने हाँ कहा, न किसी ने नहीं। इसके बाद कमठ गणेश की माता का हाथ पकड़कर बाहर खींच लाये। गणेश जोर जोर से रोने लगा। उस समय का दृश्य लिखते हुए लेखनी थर्राती है।

इसी समय गाँववालों का चित्त उसी रास्ते पर आती

हुई एक तेज़ रोशनी की ओर आकर्षित हुआ। वह रोशनी धीरे धीरे निकट आने लगी। देखते ही देखते पांच हथियारबन्द जवान आ उपस्थित हुए। कहना नहीं होगा कि इनमें सब से आगे का सैनिक गणेश का पिता कृपाशंकर ही था। गाँववालों में से उसे किसी ने न पहिचाना। गणेश की माँ ने समझा, यह कोई ईश्वरीय सहायता है। अपने दरवाजे पर ऐसी भीड़ देख कृपाशंकर सहसा बोल उठे—"क्या मामला है?" पति की आवाज़ पहिचानते ही गणेश की माँ अधीर हो उठी। वह पति के चरणों पर जा गिरी और विलख-विलखकर रोने लगी। इस भीड़ का कारण जानने में कृपाशंकर को कुछ देर न लगी। उन्होंने तड़पकर कहा—

"भैया कमठ! मुझे तुम से ऐसी आशा न थी। अब इस भंगी का जूठा तुम्हीं को खाना होगा। यदि न खाया तो इस बन्दूक का आखिरी फायर मेरे हाथों से तुम्हीं पर होगा।" कमठ सिटपिटा गये। धीरे धीरे गाँववाले सब अपने अपने घर चले गये।

× × × ×

दूसरे दिन सबेरा होते ही मज़दूर बुलाकर कृपाशंकर ने अपने झोपड़े की मरम्मत करवाई। उनकी स्त्री एक बार फिर कुलवधू के रूप में दिखाई देने लगी। गणेश पिता की गोद में बैठकर लड़ाई की कहानी सुनने लगा। कृपाशंकर ने घर छोड़ने के

समय से लेकर अपने क़ैद होने और छूटने तक की सारी कथा कह सुनाई। उसी दिन दोपहर को उनके साथ के शेष चारों सैनिक अपने अपने गाँव को चलने के लिए तैयार हुए। ये पाँचों आदमी साथ ही भरती हुए थे। साथ ही क़ैद भी हुए थे। इनमें परस्पर बड़ी प्रीति है। अतएव साथ ही वापिस भी आये। कहते हैं, कृपाशंकर बड़ा रुपया कमाकर ले आये थे; पर उन्होंने सब गरीबों को बाँट दिया। एक बार उनकी स्त्री ने कहा—

"प्राणधन! धन ही मनुष्य के अपमान का कारण है। कुछ दिन पहले जो हम से बोलते तक न थे, अब दोनों वक्त आकर पैर छूने के लिए लालायित रहते हैं। निश्चय जिसके पास धन है, वही बड़ा आदमी है।"

कृपाशंकर—"नहीं, बड़ा आदमी वह है जो तुम सी स्त्री का पति हो और गणेश से पुत्र का पिता।"

स्त्री ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया। कृपाशङ्कर ने उस चिर-विरहिणी को धीरे से खींचकर हृदय से लगा लिया।

मुर्दी

१

सूखी हुई खाल में छिपी हड्डियों के सिवाय उसके शरीर में और कुछ न रह गया था। शायद इसी से लोग उस जीवित नारी को मुर्दी कहते थे। उसका काला रङ्ग, सफेद बाल, बिना दाँत का मुँह, और धँसी हुई आँखें देखकर दिन में भी डर लगता था। उसको गलियों में फिरती देख माताएँ अपने बच्चों को घरों में छिपा देती थीं। कोई उसे अपने दरवाजे पर खड़ा नहीं होने देता था। उसके कोई था भी नहीं। इसीसे वह गाँव के बाहर एक झोपड़े में रहती थी।

मुर्दी उसी गाँव की लड़की थी, उसी गाँव में उसका ब्याह हुआ था, उसी गाँव में उसके साँड़ के समान तीन पुत्र बिचरते थे; पर उसी गाँव में उसे यह दिन भी देखने पड़े! एक एक करके उसके घर और नैहर के सारे प्राणी मर गये, ज़मींदार ने खेती-बारी हड़प ली; और चोरों ने उसके स्वजनों की सारी कमाई साफ़ कर दी। ऐसी कुलच्छिनी को कौन अपने दर-वाजे पर खड़ा होने दे, किसे पड़ी है कि बैठे-बिठाए आफ़त मोल ले।

मुर्दी ने कलेजे पर पत्थर रखकर सारा दुख सह लिया; पर यह दुख उससे नहीं सहा गया—जिस गांव में रानी के

समान उसका आदर था, वहीं उससे कोई दो बात भी न करे—यह उसके लिए असह्य था। पर करती क्या? जब विधाता वाम हो जाते हैं तो मनुष्य भी मुँह फेर लेते हैं—यही कहकर वह अपने हृदय को सान्त्वना देती थी।

मुर्दी के झोपड़े के पास रामदीन कुनबी का खेत था। रात को जङ्गली सुअर बड़ा उपद्रव मचाते थे। इसलिए रामदीन को खेत में बसने जाना पड़ता था। और आदमी होता तो मारे डर के बीमार हो जाता; पर रामदीन भूत-प्रेतों में बहुत विश्वास नहीं करता था। दूसरे, लड़कपन से ही रात-रात भर घर से बाहर रहने के कारण वह निडर हो गया था। इसलिये वह मुर्दी को आदमी समझता था; और कभी कभी उससे दो-चार बातें भी कर लिया करता था।

मुर्दी भीख माँगकर अपना जीवन निर्वाह करती थी। पर ईश्वर की ऐसी विचित्र लीला थी कि बड़े बड़े सगड-मुसण्डे तो भीख माँगकर ही मालामाल हो रहे थे; और बेचारी मुर्दी मुश्किल से पेट भर अन्न पाती थी।

२

एक दिन रामदीन अपने मचान पर पड़ा पड़ा बड़े जोर से चिल्ला उठा—"मुर्दी!"

मुर्दी अपने झोपड़े से बोली—"क्या है बेटा?"

रामदीन ने कहा—"कुछ नहीं।"

मुर्दी—"कुछ क्यों नहीं? अभी तो बड़े ज़ोर से चिल्ला रहे थे।"

रामदीन—"एक सपना देख रहा था।"

मुर्दी—"यही तो मैं भी सोचती थी कि तुमने कोई खराब सपना देखा है। क्या सपना था बेटा?"

रामदीन—"सपना काहे को है, सच बात है।"

मुर्दी—"चुप बेटा, कहीं सपना भी सच होता है?"

रामदीन—"होता क्यों नहीं!"

मुर्दी—"अच्छा बताओ तो क्या देखा था?"

रामदीन—"मैंने देखा था, मानों मैं इस संसार में नहीं हूँ।"

मुर्दी—"इस संसार में तो कोई भी न रहेगा, बेटा!"

रामदीन—"पर इसका मुझे अफसोस नहीं है।"

मुर्दी—"फिर?"

रामदीन—"मेरे स्त्री-बच्चे क्या करेंगे। जैसे तुमसे कोई नहीं बोलता उसी प्रकार उनसे भी कोई बात न करेगा।"

मुर्दी—"भगवान् सब का पार लगाते हैं।"

रामदीन—"मेरा बेड़ा पार नहीं लगेगा।"

मुर्दी—"क्यों बेटा?"

रामदीन—"तुम जानती हो, मेरे यही खेत है, घर में माँ है, स्त्री है और दो लड़कियाँ ब्याह करने को हैं।"

मुर्दी—"भगवान् चाहेगा तो इसी खेत से सब हो जायगा।"

रामदीन—"सो तो ठीक है; पर यह जरा सा खेत मेरा कर्ज कैसे अदा करेगा? किसी से दस रुपया लिया है, किसी से बीस। खलिहान में ही अनाज बेच देना पड़ता है; और फिर साल भर तक कर्ज लेते लेते हैरान हो जाता हूँ। अगर उस साल अकाल न पड़ता, तो मेरी ऐसी हालत न होती। तभी से सब ब्योंत बिगड़ गया।"

मुर्दी इस बार कोई जवाब न दे सकी। पर कुछ न कुछ जवाब देना जरूरी था। कहीं रामदीन यह न सोच ले कि उसे दुखिया जान मुर्दी भी उससे बात नहीं करती। इसलिए उसने अपनी खँझड़ी की मदद ली। उस नीरव निस्तब्ध रजनी में उसकी खँझड़ी बज उठी और उसने गाया—

निरधन के धन राम—
समुझ मन, निरधन के धन राम।
निरबल के बल राम—
समुझ मन, निरबल के बल राम॥

जिस समय मुर्दी ने यह गीत गाया, उस समय हवा उसके झोपड़े से गाँव की तरफ बह रही थी। सारे गाँव की निद्रा भङ्ग होगई। गाएँ रांभने लगीं, कुत्ते भूँकने लगे, बच्चे रोने लगे, बुड्ढे खाँसने लगे। पड़ोसी लोग एक दूसरे को

आवाज लगाकर कहने लगे—"जान पड़ता है, आज मुर्दी बेचारे रामदीन को खा जायगी!"

३

जब मनुष्य का दिल थककर निराश हो जाता है तो वह यह चाहने लगता है कि कोई उसकी सारी व्यथा सुने और उसे धैर्य्य बँधाए। मुर्दी की व्यथा सुनने और समझनेवाला कोई नहीं था; पर रामदीन को मुर्दी मिल गई। अब दोनों से रात रात भर बातें होने लगीं और बीच में मुर्दी की खँझड़ी बजने लगी।

रामदीन अपनी व्यथा मुर्दी से कहता और मुर्दी रामदीन से अपना दुखड़ा रोती। इस प्रकार दोनों में माँ-बेटे का सा सम्बन्ध हो गया।

कहने-सुनने और दूसरों के धैर्य्य बँधाने से हृदय को शान्ति मिलती है; पर कर्ज नहीं अदा हो सकता। रामदीन इसी चिन्ता में कमजोर हो गया, उसका पेट निकल आया, उसकी भूख जाती रही। लोग कहने लगे—"भाई रामदीन, उस खेत को छोड़ दो, कोई दूसरी जमीन लो, नहीं तो मुर्दी तुम्हें खा जायगी।"

रामदीन पर तो इन बातों का कोई असर नहीं हुआ; पर उसकी माँ और स्त्री मारे भय के काँप उठीं। उन्होंने रामदीन को खेत छोड़ देने के लिए लाचार कर दिया।

रामदीन ने अगली बरसात से वह खेत तो छोड़ दिया, पर उसे दूसरा खेत नहीं मिला। बरसात बीतते ही उस पर कर्ज़ के तकाज़े होने लगे। उसका चूल्हा बन्द रहने लगा। अब उसके लिए जीना मुश्किल था।

४

एक दिन रात को जब सोया तो सोता ही रह गया! सबेरे उठकर उसकी माँ ने कहा—"बेटा, आज तीन दिन से चूल्हा नहीं जला। जाओ! कहीं से कुछ ले आओ।"

पहले रामदीन माँ की ऐसी बातें सुनकर और कुछ नहीं करता था, तो रो देता था; पर आज उसके आँसू तक नहीं निकले।

माँ ने क़रीब जाकर उसका हाथ पकड़कर उठाने की चेष्टा की; पर वह लकड़ी हो चुका था। माता ने पुत्र का हाथ छोड़ दिया और वह चीख़ मारकर चिल्ला उठी।

रामदीन की स्त्री जाग रही थी; पर घर में कुछ काम न होने के कारण, तथा कई दिन की भूखी होने के कारण, चुपचाप बिस्तर पर पड़ी थी। सास का रोना सुनकर वह भी पति की खाट के पास आ गई।

उसने देखा कि जीवन का जो एक मात्र सहारा था, वह भी जाता रहा। सास तो रो रही थी; पर उसकी आँख से आँसू की बूँद तक न निकली। आँखें फाड़-फाड़-

कर चारों तरफ़ ऐसे देखने लगी, मानों वह अपने घर में न हो—किसी नुमाइश में पहुँच गई हो।

रामदीन के मरने का समाचार वर्षा के बादलों की तरह सारे गाँव में ऐसा फैला कि जिस जिसका वह कर्ज़ चाहता था, सब उसके द्वार पर जमा हो गये। समवेदना के लिए नहीं, दुखी परिवार के साथ रोने के लिए नहीं, वज्र से आहत अनाथ विधवाओं से अपना कर्ज़ वसूल करने के लिए!

रामदीन की माँ ने कहा—"मेरे घर में कुछ भी नहीं है, बेटे के लिए कफ़न तो दूर, चार कपड़े भी नहीं हैं। इस समय आप लोग न सतावें, मैं जब तक जिऊँगी, आप लोगों का कर्ज़ पटाऊँगी।"

पर वृद्धा की विनती पर कोई ध्यान देनेवाला न था। सभी यह कहते थे—"मेरा तो थोड़ा ही सा है, जल्दी से दे दो।" एक ने तो यहाँ तक कह दिया—"जब तक हमारा पाई पाई वसूल न हो जायगा तब तक लाश न उठने दूँगा। मेरी रक़म हज़म कर जाना आसान नहीं है।"

रामदीन की तीन रोज़ की भूखी पत्नी चुपचाप पति के पास बैठी यह दृश्य देख रही थी। वह यह समझ रही थी कि लोग बिना अपना कर्ज़ वसूल किये पतिदेव को जाने न देंगे। यह सोचकर उसे कुछ ढाढ़स हो आता था; पर जब वह यह सोचती कि पति देवता कर्ज़ कैसे अदा करेंगे, उनके

पास तो सिवाय फटी धोती के और कुछ नहीं है, तो फिर आँखें फाड़-फाड़कर पागल की भाँति चारों तरफ़ घूरने लगती।

सबेरे से दोपहर हो गई; पर रामदीन की लाश घर से बाहर नहीं निकल सकी। उसमें सड़न पैदा हो गई; और दुर्गन्धि निकलने लगी। पर धन्य है कर्ज़ माँगनेवालों को! वे अपनी बात पर डटे रहे! संसार कितना स्वार्थी हो गया है! लोग कहते हैं, साँप आदमी को डँस लेता है, शेर आदमी को खा जाता हैं। पर हमारी समझ में तो आदमी आदमी के लिए साँप और शेर से भी भयङ्कर है। साँप और शेर मारकर छोड़ देते हैं; पर आदमी प्राण हर लेने पर भी नहीं छोड़ता। आज किसी के दस रुपये, किसी के दो रुपये और किसी के केवल एक रुपये का कर्ज़दार होने के कारण रामदीन, मर जाने पर भी, घर से बाहर नहीं निकलने पाता! आह! संसार कितना स्वार्थी है!

५

जब मुर्दी ने यह समाचार सुना कि रामदीन मर गया; और उसकी लाश केवल थोड़े से रुपयों के कारण सड़ रही है, तो उसे उस स्वार्थी गाँव के ऊपर बड़ा गुस्सा आया। यह वही गाँव था जो उसके दुःख में दुखी होने के बजाय उससे दूर भागता था। मुर्दी बड़ी सहृदया नारी थी। अगर रामदीन उसका कर्ज़दार होता, तो शायद वह किसी से ऐसे समय में

इस बात का जिक्र तक न करती। उसने सोचा, चाहे जैसे हो, रामदीन की सहायता करनी चाहिए। उसके पति, मरते समय, उसे एक मटका रुपया दे गये थे। पति की वस्तु समझ उसने उसमें से कभी कुछ न निकाला था; और सदैव वह अपने पास रखती थी। मिट्टी का पुराना बर्तन समझ चोरों का भी ध्यान उस ओर नहीं गया था। मुर्दी ने फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटे उस मटके को निकाला और उसे सिर पर रख रामदीन के घर की ओर चल पड़ी।

रामदीन की स्त्री अभी तक चुप थी। पर मुर्दी को देखते ही उसे ऐसा माल्लूम हुआ, मानों उसे वह चीज़ मिल गई जिसे वह आँखें फाड़-फाड़कर देख रही थी। वह दौड़कर मुर्दी के पैरों से लिपट गई और काँपती हुई आवाज़ में बोली—"मुर्दी! मेरा प्राण हर ले! मुझे खा जा!! तेरा बड़ा एहसान मानूँगी! मैं बड़ी दुखी हूँ! दया कर! मुझे फ़ौरन मार डाल।"

मुर्दी इसका कुछ अर्थ न समझ सकी। वृद्ध शरीर, मटके का बोझ और पैर में लिपटी रामदान की स्त्री। तीनों ने उसे डगमगा दिया। हरे बाँस के समान उसका शरीर हिल गया, मटका पृथ्वी पर गिरकर चूर हो गया, और रुपयों का ढेर लग गया! देखनेवाले आश्चर्य-चकित हो गये।

मुर्दी ने अपने दोनों हाथों से चारों तरफ़ रुपया फेंकना

शुरू किया और ज़ोर ज़ोर से कहा—"स्वार्थी कुत्तो ! अपना अपना रुपया लो और फ़ौरन यहाँ से भागो।"

आधा रुपया फेंक चुकने के बाद उसने रामदीन की स्त्री से कहा—"लो, यह रुपया तुम्हें देती हूँ। इससे अपनी बेटियों की शादी करना और अपना शेष जीवन व्यतीत करना। जो दुःख कोई नहीं सह सकता, उसे स्त्री सह लेती है। तुम स्त्री हो, इस विपत्ति को धैर्य्य से सह लो, अपना कलेजा मज़बूत करो।"

इसके बाद मुर्दी फिर ज़ोर ज़ोर से अपना वही पुराना गीत "निर्धन के धन राम, समुझ मन, निर्धन के धन राम!" गाने लगी।

अब गाँववालों को मालूम हुआ कि मुर्दी चुड़ैल नहीं, साक्षात् लक्ष्मी है; पर उन्हें लक्ष्मी का दर्शन बदा नहीं था, क्योंकि इस घटना के बाद उस गाँव में मुर्दी फिर कभी नहीं दिखाई पड़ी।

अक्षम्य अपराध

१

कुमारी श्यामा ने जिस वर्ष बी० ए० पास किया, उसी वर्ष उसकी माता ने इस संसार से सदा के लिए कूच कर जाने का निश्चय सा कर लिया था। एक दिन उन्होंने पुत्री को बुलवा-कर कहा—"बेटी, अब मैं न बचूँगी!"

"ऐसा नहीं कहना चाहिए माँ!"

"कहना तो न चाहिए, मगर बात ऐसी ही है, बेटी! मैं तेरा विवाह न देख सकूँगी।" इस बार श्यामा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

माँ ने कहा—"बेटी, जब मैं तेरे पिता के साथ विला-यत गई थी तो मैंने वहाँ जो कुछ देखा, उसका मेरे हृदय पर उलटा ही असर पड़ा। वहाँ स्त्री और पुरुष का प्रेम बहुत कुछ बनावटी होता है। लोग प्रेम का इज़हार देना खूब जानते हैं; मगर उसको निबाहना कदाचित ही कोई जानता हो। मुझे बड़ा डर लगता है कि कहीं तू भी इसी प्रकार के बनावटी प्रेम के फन्दे में न पड़ जा।"

श्यामा ने कहा—"माँ! मैं विवाह करूँगी ही नहीं।"

माता ने गम्भीर भाव से कहा—"यह और भी खराबी की बात होगी, बेटा! मैंने इंग्लैंड में सैकड़ों ऐसी लड़कियाँ

देखी हैं, जिन्हें विवाह से घृणा है; लेकिन मैंने उनको विवाहिताओं से भी अधिक असंयमी पाया है।"

श्यामा—"तो माँ, तुम जैसा कहोगी वैसा ही करूँगी—तुम जिसके साथ कहोगी, मैं उसी के साथ विवाह कर लूँगी।"

सरलहृदया श्यामा के मुख से ये बातें सुनकर माता का हृदय गद्गद् हो गया। उसने कहा—"बेटी! आज-कल अधिकांश युवकों और युवतियों की यह धारणा हो गयी है कि माँ-बाप अपनी बच्चियों का ब्याह आँख मूँद कर देते हैं। मगर वास्तव में यह बात नहीं है। माँ-बाप जो करते हैं, अपनी समझ के अनुसार अच्छा ही करते हैं। अब देख तेरी भाभी के माँ-बाप ने अपनी बेटी का ब्याह तेरे भाई के साथ करके कौन सी भूल की? उन्हें क्या मालूम था कि वह बैरिस्टरी पास करते ही ऐसा हो जायगा। यह मैं जानती हूँ कि इस बैरिस्टर को कोई बनावटी प्रेम दिखानेवाली तितली अधिक पसन्द आती। और इसका लड़कपन में विवाह करके हम लोगों से गलती भी हुई है। मगर अब तो जो होना था, हो चुका। हिन्दू धर्म में तो विवाह-विच्छेद की गुंजाइश नहीं है। मैं सोचती हूँ कि तेरा विवाह हम लोग अपनी रुचि के अनुसार करें, तो कहीं ऐसा न हो कि तू भी पति का वैसा ही तिरस्कार करे जैसा तेरा भाई अपनी पत्नी का कर रहा है।"

श्यामा—"हो सकता है माँ! इस संसार में कुछ

असम्भव नहीं है। मगर मेरा अन्तःकरण कहता है कि मैं अपने धर्म की मर्य्यादा का कदापि उलङ्घन न करूँगी।"

माता—"बहुत ठीक बेटी! तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है। अब मैं तुझे तेरे विवाह में राय देने के लिए न रहूँगी। हाँ, इतना कहे देती हूँ कि विवाह उसी के साथ करना जो हिन्दू धर्म को मानता हो। दूसरे, विवाह के बाद प्रेम शिथिल हो जाने पर उसका अनादर मत करना। तीसरे, यदि वह विधर्मी हो जाय तो भी तू इस धर्म को न छोड़ना।"

२

जिस वर्ष श्यामा ने बी० ए० पास किया था, उसी वर्ष, और उसी कालिज से, बसन्तकुमार जैन ने भी बी० ए० पास किया था। बसन्तकुमार जैन एक गठीले शरीर का सुन्दर युवक था। कालिज में ही लड़कों ने यह उड़ा दिया था कि श्यामा और बसंतकुमार एक दूसरे पर आसक्त हैं। बसंतकुमार श्यामा के घर अक्सर आते-जाते थे। कहते हैं, एक बार श्यामा भी बसन्तकुमार के साथ अकेले हो किसी मेम से मिलने गयी थी। श्यामा की माता बसंतकुमार के साथ अपनी लड़की का विवाह नहीं करना चाहती थी। इसीलिए उस रोज कदाचित् बेटी को बुलाकर उपरोक्त बातें कही थीं।

कभी-कभी लोगों का अनुमान भी कितना गलत हो जाता है। बसंतकुमार ने यह प्रण कर रक्खा था कि वह इस

जन्म में विवाह करेगा ही नहीं। श्यामा की सुंदरता का उसके हृदय पर वैसा ही प्रभाव पड़ा था जैसा एक बहिन का भाई पर पड़ना चाहिए। वह श्यामा को बड़ी इज्जत की दृष्टि से देखता था। यही कारण है कि श्यामा भी बसंतकुमार से अन्य लड़कों की अपेक्षा अधिक मिलती और आजादी से बात-चीत करती थी। उसने कालिज में बसंत को सदैव "ब्रदर बसंत (भैया बसंत)" कहकर पुकारा था।

३

श्यामा की माता अब इस संसार में नहीं है। अब श्यामा अकेली अपनी भावज के साथ रहती है। क्योंकि श्यामा के भाई ने अपने रहने के लिए एक अलग अकेला बँङ्गला ले लिया है। श्यामा ने अपनी भावज को पढ़ाया लिखाया तो अवश्य, पर वह तितली न बन सकी। तितली बननेवाली उमर ही और होती है। भाई से श्यामा को किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। पिता की पेन्शन ही जीविका का एक-मात्र आधार है। श्यामा ने कई बार चाहा कि किसी स्कूल में मास्टरी कर ले; पर उसके पिता ने न करने दिया। वे इस बात के खिलाफ थे कि स्त्रियाँ अपनी जीविका स्वयं उपार्जन करें। एक दिन उन्होंने कहा—"बेटी, बसंत कुमार के साथ तेरा व्या.........।"

श्यामा ने सिर नीचा करके कहा—"नहीं हो सकता।"

"क्यों?"

"वे जैन हैं।"

"इससे क्या?"

"इन्टर-मैरिज (अन्तर्विवाह) के लिए माता की अनुमति नहीं थी।"

"पिता की तो है?"

"वसन्तकुमार विवाह नहीं करना चाहते।"

"कैसे मालूम?"

"उन्होंने इसके लिए अपने पिता को बहुत कड़े-कड़े कई उत्तर दिये हैं।"

श्यामा के पिता चुप हो रहे। उन्होंने मन ही मन कहा—"बसन्तकुमार से एक रोज चलकर पूछना चाहिए, यदि वह राजी हो गया तो मैं इस चिन्ता से बरी हो जाऊँगा।"

इधर श्यामा ने अनुभव किया—मानों वह बसन्तकुमार को प्यार करती है। ईश्वर! क्या माता की अनुमति का निरादर ही होगा!

४

श्यामा की भावज ने कहा—"क्या मैं किसी प्रकार सुन्दर नहीं बन सकती?"

श्यामा—"तुम तो बड़ी सुन्दर हो।"

भावज—"तब वे मुझे क्यों नहीं चाहते?"

श्यामा—"वे तुम्हारी सुन्दरता की कदर करना नहीं जानते।"

भावज—"और उस वेश्या की कदर करना जानते हैं ?"

श्यामा—"हाँ।"

भावज—"तुम तो बाहर आती-जाती हो। एक बार मुझे उस वेश्या से मिलाओ। मैं देख लूँ कि उसमें क्या बात है और मुझमें नहीं है। तब मुझे सन्तोष हो जायगा।"

श्यामा ने उसी दिन शाम को मर्दाने लिबास में एक खुली बग्घी पर बैठकर घर से प्रस्थान किया। सड़कों पर मशहूर कर दिया गया कि गोहट रियासत के राजकुमार आये हैं। वेश्याएँ अपनी-अपनी खिड़कियों पर सज-धजकर मुस्कराने लगीं। नज़ीरनजान के सामने बग्घी खड़ी हो गई। बग्घी से एक नौकर ऊपर गया और बोला—"बीबीजान! राजकुमार बुला रहे हैं। रोवायलपार्क में तुमको लेकर घूमने जाना चाहते हैं।"

बीबी ने हँसकर कहा—"कितनी देर के लिए।"

बग्घी पर बैठे कोचवान ने कहा—"सिर्फ एक घंटे के लिए।"

छत पर से एक बुड्ढी औरत ने कहा—"एक हज़ार लगेंगे।"

"दो हज़ार देंगे।" कोचवान बोला।

बात की बात में नज़ीरनजान सज-धजकर बग्घी पर आ

बैठी। घोड़े चल पड़े और दोनों तरफ से झांकनेवाली सारी वेश्याओं का मुँह फीका हो गया।

५

श्यामा के भाई को अपने रूप और सम्पत्ति का बड़ा अभिमान था। वे समझते थे, नज़ीरन उनके ऊपर जी-जान से कुर्बान है। पर आज उसे एक असभ्य राजकुमार के साथ घूमते देखकर उनका खून उबल पड़ा। मन में तो आया कि उसका केश पकड़कर इसे बग्घी से नीचे खींचकर गिरा दें; पर राजकुमार के आगे-पीछे चलनेवाले चार-चार सुसज्जित सवारों को देखकर उनको चुप रह जाना पड़ा। दूसरे दिन बड़े सबेरे ही वे नज़ीरन को डाँटने उसके घर पहुँचे।

घर पहुँचने पर नज़ीरन की माँ ने कहा—"बेटी आज मिल नहीं सकती, बहुत बीमार है।"

"बीमारी का कारण मैं जानता हूँ।"

नज़ीरन की माँ ने कहा—"बैरिस्टर साहब, बिगड़ो मत, अभी खुश कर दूंगी। आज एक बहुत ही सुन्दर चुटकुलेदार छोकरी आई है। नज़ीरन उसके सामने क्या है! कुछ मुँह मीठा करवाइये।"

बैरिस्टर साहब ने ज़रा पास जाकर कहा—"कौन है ?"

नज़ीरन की माँ—"एक ईरानी सुन्दरी है।"

बैरिस्टर—"ज़रूर मिलाओ। ज़रूर मिलाओ। तुम नज़ी-

रन जैसी बेवफा चुड़ैल की माँ फ़िजूल हुईं। तुम्हें मेरा माँ होना था।"

नज़ीरन की माँ ने मुस्कराते हुए उन्हें एक सुसज्जित कमरे की ओर इशारा कर दिया।

बैरिस्टर साहब ने अन्दर आकर देखा कि सचमुच एक ईरानी महिला उनकी ओर पीठ किये बैठी है; और उसके काले केश नाग से उसकी पीठ पर लोट रहे हैं। किन्तु पास पहुँचते ही वे चकित हो गये। उन्होंने देखा, उनकी बहिन श्यामा ईरानी महिला का वेश बनाये बैठी है।"

पहिले तो उनके मुख से कोई शब्द न निकला। क्षण भर के बाद उन्होंने कहा—"बहिन श्यामा! बहिन श्यामा! मैं तुम्हें किसके घर देख रहा हूँ।"

श्यामा—"यहाँ बहिन और भाई का रिस्ता काम नहीं देता। यहाँ आप जिस काम के लिए आये हैं, वही कीजिये। अपनी पाशविक वृत्ति तृप्त कीजिये।"

बैरिस्टर सा०—"तो क्या तुमने वेश्यावृत्ति स्वीकार कर ली?"

श्यामा—"करनी ही पड़ेगी।"

बैरिस्टर—"किसके लिए।"

श्यामा—"अपने भाई—तुम्हारे लिए—जब भाई व्यभिचारी होंगे तो बहिनों को उनके लिए वेश्या बनना ही पड़ेगा।"

श्यामा का भाई मारे लज्जा, ग्लानि और पश्चात्ताप के दहल गया। वह श्यामा के चरणों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर बोला—"बहिन! बहिन! दया करो। क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी? एक बार मुझे प्रायश्चित्त करने का मौक़ा दो।"

श्यामा—"मैं तुम्हें क्षमा करनेवाली कौन हूँ? तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया। इसके लिए, यदि तुम प्रायश्चित्त करना ही चाहते हो तो तुम्हें मेरी भावज—अपनी विवाहिता पत्नी से क्षमा-प्रार्थना करनी होगी।"

"करूँगा बहिन! करूँगा। उस देवी की मैंने इज़्ज़त नहीं की, इसका मुझे कल ही से बड़ा ख़याल हो रहा था।"

थोड़ी देर में नज़ीरन श्यामा की भावज के साथ आ उपस्थित हुई और बोली—"राजकुमार! क्या तुम मुझे इन बैरिस्टर साहब से ज्यादा प्यार करते हो?"

श्यामा की भावज ने कहा—"बेशक।"

६

श्यामा के पिता ने बसन्तकुमार से कहा—"तो हम लोगों का यह ख्याल ग़लत था?"

बसन्त—"क्या?"

श्यामा के पिता—"कि तुम श्यामा को प्यार करते हो।"

बसन्त—"श्यामा को तो मैं अब भी प्यार करता हूँ।"

"तो उसके साथ शादी क्यों नहीं करते ?"

"शादी मैंने कर ली।"

"किसके साथ और कब ?"

"आपको सब श्यामा से ही मालूम हो जायगा।"

उसी समय श्यामा के भाई ने पत्नी के सहित आकर पिता के चरणों में प्रणाम किया। पुत्र और पुत्र-बधू में इस अनोखे मेल का कारण न जान वृद्ध पिता को और भी अधिक चकित होना पड़ा। वे कुछ कहने ही वाले थे कि श्यामा भी नज़ीरन के साथ वहाँ आ उपस्थित हुई और बोली—"पिताजी! बसन्त के साथ मेरा विवाह नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वे नज़ीरन को सनाथ करेंगे।"

बसन्त का मुँह अभिमान और आनन्द से चमक उठा। श्यामा के पिता ने कहा—"खूब! बसन्त खूब! तुमने एक वेश्या को सनाथ करके यह दिखला दिया कि देश के नवयुवक वेश्यावृत्ति को कहाँ तक रोक सकते हैं।"

नज़ीरन—"ओफ़! इतनी तारीफ़! उन्होंने मुझे वेश्यावृत्ति से मुक्त करने के अभिप्राय से नहीं सनाथ किया। इसके लिए श्यामा की तारीफ़ करनी चाहिए। बसन्त ने तो सिर्फ़ अपने माशूक का कहना किया है, जो एक सच्चे आशिक के लिए उचित ही था।"

श्यामा ने अनुभव किया कि उसने बसन्तकुमार के निकट एक 'अक्षम्य अपराध' किया है।

रात की बात

१

जब घर के सब लोग खा-पी चुके और घड़ी ने टन-टन करके ग्यारह बजा दिये तो एक अधेड़ स्त्री ने रसोई-घर के सामने आकर कहा—"खाने लगीं! पेट न ठहरा भाड़ हो गया! ज़रा देर और ठहर जातीं तो क्या होता! मदनपुर के ठाकुर आये हैं, अब आखिर फिर से चूल्हा पोतना पड़ेगा न!"

बेचारी सुमना पहिली रोटी भी खतम न कर पाई थी कि उसे सास के उपरोक्त शब्द सुनने पड़े। वह झट-पट थाली लेकर बाहर निकल आई और हाथ-मुँह धोकर चुपचाप झाड़ू तलाशने लगी। सास ने फिर कहा—

"चला नहीं जाता! पेट तो तन गया है!"

सुमना क्रोध से लाल हो गई। उसके मुँह से निकल पड़ा—"अच्छा अम्मा! कल से तुम मेरे लिए अपने हाथ से अन्दाज कर खाना निकाल दिया करो। मैं तो अपनी समझ में थोड़ा ही खाती हूँ–फिर भी न मालूम पेट क्यों तन जाता है?"

"क्यों न निकाल दूँगी! ज़रूर निकाल दूँगी! हरामजादी

कहीं की, ज़बान लड़ाती है !"

"ज़बान तुमसे कौन लड़ा सकती है ?"

इतना सुनना था कि सास ने गरजकर कहा—"किसी की हिम्मत क्या है जो ज़बान लड़ा सके ?"

"किसी की नहीं"—कहते हुए सुमना रसोईघर में झाड़ू लेकर घुस गयी और सिसक-सिसककर रोने तथा झाड़ू लगाने लगी।

"कोई मर नहीं गया है री राँड़ ! निकल घर से बाहर ! मैं सब काम खुद ही कर लूँगी।"

२

माधोसिंह ने मदनपुर के ठाकुर से कहा, "क्या कहें मित्र ! बड़ी परेशानी है। मेरे घर में दो ही स्त्रियां हैं—पत्नी और पतोहू; फिर भी उनमें कभी बनती नहीं। रोज ही एक न एक झगड़ा खड़ा रहता है। हाँ, हमने सुना, आप शहर गये थे—नरायन का भी कुछ हाल मिला है ? आज ही कल में आनेवाला था, न मालूम क्यों नहीं आया ?"

"आया तो है। बेचन तिवारी के यहाँ कुछ गप-शप करने लगा था। मैं आगे बढ़ आया। दस-पाँच मिनट में आया ही जाता है।"

माधोसिंह कुछ कहने ही वाले थे कि पुत्र ने अचानक

आकर उनको चरण छूकर प्रणाम किया। मदनपुर के ठाकुर ने कहा—"माधो ! तुमने बेटे को खूब पढ़ाया। मेरा लड़का तो नालायक निकल गया। वह तो अपनी औरत को इतना प्यार करता है कि कभी-कभी उसी के लिए अपनी माँ को भी मार बैठता है।"

"ठीक ही तो करता है। यदि मेरा लड़का भी अपनी माँ को डाँट-डपट दिया करता, तो मेरी पतोहू इतना कष्ट न पाती।"

"क्या कहते हो ! बहू-बेटियों पर तो शासन करना ही चाहिए।"

"मेरी पतोहू देवी है।"

"और स्त्री क्या दानवी है ?"

मदनपुर के ठाकुर को अपनी तरफ़ से वकालत करते देख और अधिक प्रशंसा लूटने के अभिप्राय से माधोसिंह की स्त्री ने सुमना को रसोईघर से निकाल दिया और स्वयं भोजन तैयार करने लगी। उसने रसोई-घर से चिल्लाकर कहा—"सुनते हो ! सुनते हो ! ज़रा पुन्नू की अम्मा को तो बुलवा देना—तुम्हारी पतोहू क्या मोल की खरीदी हुई है ? वह आधी रात को रोटी नहीं बना सकती। मुझे ससलबाई का अजार है, नहीं तो मैं अकेली ही एक बरात को जिमा देती।"

माधोसिंह जहां बैठे थे वहीं से बोले—रसोई बनाने की

जरूरत नहीं है। मदनपुर में एक कतल का मामला हो गया है उसीके सम्बन्ध में कुछ गवाही इत्यादि की तलाश में ठाकुर साहब आये थे, अब वापस जा रहे हैं, काम जल्दी का है। हाँ, नरायन खाना चाहे तो बना दो।"

नरायन ने कहा—"तिवराइन ने मुझे खूब खिला दिया है। अब बिलकुल भूख नहीं है।"

३

बेचन तिवारी माधोसिंह के पुरोहित हैं। कोई सन्तान न होने के कारण वे नरायन को लड़कपन से ही बहुत प्यार करते चले आये हैं। तिवराइनजी भी नरायन को वैसा ही मानती हैं, मानो वह उन्हीं के पेट से पैदा हुआ है। यही कारण है कि नरायन की पत्नी सुमना का दुःख इस दम्पति से देखा नहीं जाता। तिवराइनजी के मुख से अपनी पत्नी का कष्ट सुनकर नरायन दुःखी अवश्य हुआ; पर इसका उपचार ही उसके हाथ में क्या था! इसी चिन्ता से चूर उसने सुमना के कमरे में प्रवेश किया। पति का दर्शन कर सुमना प्रसन्न हो उठी।

नरायन ने कहा—"सुना है, माता जी तुम्हें बहुत कष्ट देती हैं?"

"कष्ट ही सहन करने के लिए तो परमात्मा ने स्त्री जाति की सृष्टि की है।" कहते हुए सुमना ने हँसने की चेष्टा की। पर उसका गला भर आया और आँखें भींग गयीं।

"तुम्हें एक साल का कष्ट और है। पारसाल से मैं तुम्हें अपने पास बुला लूँगा।"

"इसी साल क्यों नहीं बुला लेते?"

"खर्च बढ़ जायगा और पिताजी सँभाल न सकेंगे। पारसाल का फाइनल कर लूँगा। कुछ न कुछ आमदनी का सिल-सिला निकल ही आयेगा।"

सुमना के कपोल आसुओं से तर थे। यद्यपि उसने कुछ कहा नहीं, तथापि नरायन को उसका कष्ट अनुभव करने में कुछ देर नहीं लगी।

सुमना ने कहा—"भैया बुलाने आये थे। बिदा नहीं किया, नहीं तो कुछ दिन नैहर में ही रहती।"

यद्यपि नरायन का हृदय रो रहा था, फिर भी उसने अपनी वचनचातुरी से सुमना को सान्त्वना देते हुए कहा—"मैं अगर स्त्री होता तो कैसी ही बिगड़ैल सास क्यों न पाता, उसे जरूर खुश कर लेता। अम्मा तुम्हें मारती हैं तो मारने दो; मर तो न जाओगी? गर्मी में जो पेड़ झुलस जाते हैं बरसात में वही हरियाली से लहलहा उठते हैं। यह तुम्हारे जीवन का ग्रीष्म है। लेकिन यह भी ध्यान रक्खो कि वर्षा का मौसिम भी शीघ्र ही आनेवाला है।"

"मैं कुछ कहती तो नहीं? मगर मुझे जान से मार डालती, तो मैं कदापि इतनी दुःखी न होती।"

नरायन ने कहा—"मेरी माँ मुझे तो बहुत प्यार करती है। मेरे लिए प्राण दे सकती है, फिर वह तुम्हें—मेरी स्त्री को—क्यों नहीं प्यार करती?"

सुमना ने कहा—"तुम उनके पेट से पैदा हुए हो, उनके अंश हो, इसीलिए।"

नरायन—"अच्छा तुम्हारी माँ तो मुझे तुमसे भी अधिक प्यार करती हैं। यह क्यों?"

सुमना—"क्योंकि मेरे जीवन के एक मात्र तुम्हीं अवलम्ब हो। तुम्हारे बिना मैं मिट्टी की पुतली हो जाऊँगी, दुःख-मूर्ति हो जाऊँगी, सर्वस्व गवाँ बैठूँगी।"

नरायन—"यह तो मैं भी तुमसे कह सकता हूँ।"

सुमना—"नहीं प्रियतम! आप नहीं कह सकते! मैं आपके जीवन की सर्वस्व नहीं हूँ। मेरे न रहने पर आपको नई दुलहिन मिल जायगी। घर उजड़ेगा नहीं; फिर आबाद हो जायगा। अगर समाज में ऐसा नियम होता कि एक स्त्री के मर जाने पर पुरुष भी पुनर्विवाह न कर सकते, तो मैं इतनी अनावश्यक न समझी जाती। तुम्हारी माँ यदि चाहें तो मेरे जीवित रहते भी तुम्हारा एक विवाह और कर सकती हैं; परन्तु मेरी माँ किसी दशा में भी (ईश्वर ऐसा न करे) मेरे लिए वैसा नहीं कर सकती।"

नरायन ने इस बार कोई उत्तर नहीं दिया।

४

जब बहुत दिनों के बाद दम्पति मिलते हैं तो विरह-निवेदन के पश्चात् हँसी-मज़ाक का भी समय आये बिना नहीं रहता। नरायन ने पड़े-पड़े यह सोच लिया कि स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति सब प्रकार की आज़ादी रहे तो नई बहुओं को ऐसा कष्ट कदापि न भोगना पड़े। कल्पना यहाँ तक दौड़ी कि स्त्रियों की पोशाक भी पुरुषों की ही भाँति होनी चाहिए। अब नरायन ने सुमना से कहा—"आज तुम ज़रा मेरे कपड़े तो पहिनो, देखूँ कैसी लगती हो।"

नरायन ने अपनी काली और गोल टोपी सुमना के सिर पर रख दी। "वाह! वाह! लो कमीज़ तो पहिनो।" कहते हुए नरायन ने सुमना के अञ्चल का छोर पकड़ लिया।

मारे लज्जा के सुमना का गाल होंठ से कान की जड़ तक लाल हो गया। उसने अनुभव किया कि कमर के ऊपर साड़ी का एक सूत भी नहीं है! वह गठरी की भाँति सिकुड़ गई और उसकी आखें बन्द हो गईं।

"ऐं! यह क्या पैंट! मैं पैंट नहीं पहिनूँगी।"

"तुम्हें साहब बनाऊँगा।"

"और तुम बीबी बनोगी?"

"अगर तुम कहोगी।"

"अच्छा पहिले तुम साड़ी पहिनो।"

नरायन ने बात की बात में अपने सारे कपड़े उतार साड़ी पहिन ली। मूँछ और दाढ़ी पहिले ही से मुड़ी थी। साड़ी के नीचे गाउन न पहिनना सभ्यता का अनादर ही था। अतएव गाउन भी पहिन लिया।

९

सुमना ने कहा—"पेटी बहुत कसी है। कमर में दर्द हो रहा है। अरे! यह शोर कैसा हो रहा है!"

"मरे! मरे!! बड़े जोरों की आग लगी है! दौड़ो!"

नरायन—"मालूम होता है कहीं आग लग गई है। जल्दी मेरे सब कपड़े निकाल दो।"

"बाप रे बाप! पेटी तो खुलती ही नहीं, न मालुम कितना कसकर बाँधा है।"

"लाओ मैं खोल दूँ।"

"पहिले तुम हमारी साड़ी तो उतारो।"

जल्दी में कोई काम नहीं हो सकता। इधर यह खींचा खाँची हो रही थी, उधर माधोसिंह ने आँगन में आकर कहा—"सब सामान जलने दो। जान लेकर भागो। लो मेरे दरवाजे पर भी आग पहुँच गई। अब खिड़की की तरफ से चलना होगा।"

बात की बात में तेज आँधी के समान कोलाहल चारों

तरफ फैल गया। नरायन को सपत्नीक उसी परिवर्त्तित रूप में निकलना पड़ा। सुमना पुरुष-वेश में थी। वह एकदम बाहर निकल गई। तिवराइनजी ने उसे देखकर समझा, नरायन है। लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे लेकर अपने घर की ओर चली गई। नरायन को घर की अन्य स्त्रियों के साथ घूंघट काढ़कर निकलना पड़ा। बाहर आकर उसकी मां ने कहा—"बहू! तू तो अपने सब गहने लेती आई है न?"

नरायन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मां ने कहा—"अभी तक भुकुड़ी ही है! मैं इस प्रकार का मुँह फुलाना नहीं सह सकती! एक चांटा कसकर धर दूँगी। मुँह टेढ़ा हो जायगा।"

नरायन कोई उत्तर न देकर यह देखने की कोशिश करने लगा कि सुमना इस वक्त कहां है और उसकी क्या दुर्दशा हो रही है। माता के लिए पुत्रबधू के रूप में पुत्र का यह व्यवहार असह्य हो गया। उसने उसके गाल पर कस-कस-कर तीन-चार चांटे जमा दिये! माता से छुटकारा पाने का और कोई उपाय न देख नरायन एक ओर को बड़ी तेजी से भागा और अन्धकार में गायब हो गया। बात की बात में चारों ओर यह चर्चा फैल गई कि माधोसिंह की पतोहू, सास का अत्याचार न सह सकने के कारण, आज भाग गई। माधो-

सिंह स्त्री के ऊपर बड़े अप्रसन्न हुए। वे मारे क्रोध और अपमान के जलती हुई आग में घुसने के लिए उद्यत हो गये। उसी समय तिवराइनजी ने आकर कहा—"बहू कहीं नहीं गई। हमारे घर है। मैं उसे स्वयं ही जबरदस्ती पकड़ ले गई थी। हां, अगर उस पर इसी प्रकार मार पड़ती रही तो वह अवश्य एक न एक रोज कहीं चली ही जायगी।"

लोगों को कुछ ढाढ़स हुआ।

× × ×

एक महीने के बाद माधोसिंह ने नरायन का पत्र पाया। उसमें लिखा था—"मेरी मां सास होने की कदापि अधिकारिणी नहीं है। मैं यह नहीं चाहता कि मेरी स्त्री ऐसी निष्ठुर-हृदय सास के शासन में रहे। कृपा करके उसे उसके पिता के घर भेज दीजिये।"

दूसरे दिन सुमना की सास ने तिवराइनजी से कहा—"दीदी, तुमने मेरे लड़के को भी मुझसे नाराज करवा दिया। उस रोज मैंने जो पतोहू को मारा था वह उसके अच्छे ही के लिए था!"

तिवराइनजी ने कहा—"बहन! पतोहू को तुम जान से मार देती, तब भी पुत्र नाराज न होता और न तुम्हें कुछ कहता ही। असल में तुमने उस रोज अपने पुत्र ही को पीटा था।"

उस रात की यह बात सुनकर सुमना की सास अवाक् रह गई।

दुखी परिवार

१

बाबू कालीचरण ने पैंट में टाँग डालते हुए कहा—"आज दफ्तर से वापस आते ही स्वामीजी के पास जाऊँगा।"

"कौन स्वामी जी?" कहते हुए भुवनबाला ने उनके हाथ में पान का बीड़ा थमा दिया।

"वही जो उस दिन आये थे।"

"अच्छा, हरिद्वारवाले बाबा जी?"

"हाँ!"

"उनके पास किस लिए जाओगे?"

"तुम्हारा इलाज करायेंगे।"

"मुझे तो कोई रोग नहीं है।"

"है क्यों नहीं! जब देखो गुब्बारा सी फूली ही रहती हो। एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, चार नहीं, पाँच! पूरे पाँच लड़के हो चुके। अब यह छठवाँ होनेवाला है। यह कोई रोग ही नहीं है?"

"बाप रे बाप! किसी के लड़के-बच्चे नहीं होते?"

"होते हैं, पर इस तरह होते कहीं नहीं देखा। कोई साल खाली नहीं जाता—हर साल एक हो ही पड़ता है।"

"तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?"

"अब भी कुछ बिगड़ने को बाकी है ? मर जायँ तो कफन खरीदने के लिए भी घर में पैसा नहीं है।"

"यह तो तुम्हारा ही दोष है। कमाओ। मेहनत करो।"

"क्या मैं बैठा रहता हूँ ? दिन भर दफ़्तर में पीसता हूँ। रात के लिए भी कुछ ले आता हूँ। अब और क्या करूँ ?"

"लड़के न रहेंगे तो क्या रुपया कहीं से बरस पड़ेगा ?"

"बरस ही पड़ेगा। हर महीने कुछ न कुछ बचत होगी ही। वह कहाँ जायगी ?"

"हो चुकी बचत। जब कोई लड़के नहीं थे, तब भी तो यही हाल था।"

"थे क्यों नहीं ! तुम्हारे ससुर ने जो कमाई की थी। मरने लगे तो तीन हज़ार का कर्ज़ और दो लड़कियाँ छोड़ गये। उनका ब्याह किया, कर्ज़ अदा किया। उसके बाद आशा हुई कि अब आराम के दिन आवेंगे, पर तुम मानो तब न !"

भुवनबाला कुछ कहने ही वाली थी कि पड़ोस के स्कूल का घंटा बजा। विद्यार्थियों का समूह चिल्ला उठा। इस कोलाहल ने बाबू कालीचरण को दस बज जाने की याद दिला दी। वे झटपट घर के बाहर चले गये।

२

यहाँ बाबू कालीचरण का कुछ परिचय दे देना अनुचित न होगा। इनके बाप कायस्थ जाति के सिर-मौर थे। थोड़ी सी ज़मीदारी थी, वही उनके लिए काफी थी। कहते हैं, उनके सात लड़कियाँ ही लड़कियाँ थीं। सभी लड़कियों का विवाह वे बड़ी धूम-धाम से करना चाहते थे। इसलिए नहीं कि वे लड़कियाँ उनको बहुत प्रिय थीं; बल्कि इसलिए कि जाति के लोगों में अपनी धाक जमाये रखने के लिए वे ऐसा करने को लाचार थे। इसका नतीजा यह हुआ कि चार लड़कियों का ही विवाह करने में सारी ज़मीदारी चौपट हो गई। पाँचवीं का विवाह तीन हज़ार का कर्ज लेकर किया गया।

इस प्रकार ज़मीदारी बिकने की चिन्ता, कर्ज न अदा कर सकने का रञ्ज, सात लड़कियों के बीच में एक-मात्र प्यारे पुत्र कालीचरण की पढ़ाई की दुर्व्यवस्था, इत्यादि बातों ने उनको जवानी में ही बुड्ढा बना दिया। इन्हीं चिन्ताओं ने एकत्र होकर ऐसा बिकराल रूप धारण किया कि वे बिना मौत ही घुल-घुलकर मर गये।

आज-कल स्त्री-शिक्षा के प्रेमी और स्वतन्त्र विचार के नवयुवक अक्सर लोगों को इस बात के लिए दोषी ठहराया करते हैं कि वे पुत्र पैदा होने से जितना प्रसन्न होते हैं, कन्या पैदा होने से उतने ही दुःखी। किन्तु यदि ऐसे विचार के लोग

कालीचरण के पिता की मानसिक अवस्था का ज़रा भी अध्ययन करते तो शायद किसी पर ऐसा दोषारोपण न करते। हमारे समाज में दहेज इत्यादि की ऐसी कलुषित प्रथाएँ हैं कि कन्या के पिता को परेशान कर डालती हैं। कालीचरण के पिता तो यहाँ तक कहा करते थे—"कन्या का जन्म ही भावी दरिद्रता की सूचना है।" वास्तव में आज-कल है भी यही बात।

अपने पिता की इन कठिनाइयों को देखकर कालीचरण ने अपना विवाह न करना ही निश्चय कर लिया। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि विवाह के बाद उसके भी कुछ न कुछ लड़कियाँ अवश्य होंगी और बहिनों के ही विवाह में सारी सम्पत्ति बिक चुकी है—बेटियों को क्या देगा! किन्तु पिता के क्रोध और माता के आँसू ने उसको विवाह करने के लिये विवश किया। एक ज्योतिषीजी ने भविष्य-वाणी कर दी—"कालीचरण के पुत्र ही पुत्र होंगे।" फिर क्या था, भुवनबाला ने इस उजड़ते घर को बसा दिया।

पहले तो बहुत दिनों तक कालीचरण भुवनबाला से भागता रहा; पर जवानी के जोश, ज्योतिषी के वाक्य और यार-दोस्तों के उपदेश ने उसे जीवन के इस आनन्द को संसार-सुख का सार साबित कर दिया। एफ० ए० में फेल होने के रञ्ज को भुवनबाला ने एक सुन्दर सुत उत्पन्न करके दूर किया। जहाँ कौड़ियों की वृष्टि होती थी वहीं मोती बरस पड़े। काली-

चरण की माँ ने गर्व के साथ मन ही मन कहा—"अगर इसके सात बेटे भी पैदा हो गये, तो सात लड़कियों-द्वारा ले जाई गई घर की सारी सम्पत्ति फिर वापस आ जायगी। और अगर ईश्वर ने आठवें बेटे का भी मुँह दिखाया तो आमदनी दुगुनी होनी शुरू हो जायगी!" कालीचरण भी इसी प्रकार से एक अज्ञात आनन्द में फूल उठा। इस भविष्य-सुख की आशा में कालीचरण के पिता को अपनी चिन्ताएँ दूर करने की शक्ति न थी। अतएव वे मरते समय भी यही कहते रहे—"जिस सम्पत्ति से कालीचरण पढ़-लिखकर हमारा मस्तक उज्ज्वल कर सकता था वही सम्पत्ति लड़कियों के विवाह-सागर की भयावनी लहरें काट-काट कर बहा ले गई—अब हमारे मुँह में स्याही पोत दी! न इतनी लड़किथाँ पैदा होतीं, तो आज क्यों......।"

जिस प्रकार एक बाजी जीतने पर खेलाड़ी मन-बढ़ हो जाता है, उसी प्रकार एक पुत्र होते ही कालीचरण भी उत्साहों और आकांक्षाओं के समूह बन गये।

उन्होंने भुवनबाला और माँ के आभूषण तथा बाबा-आदम के समय से बने हुए घर को बेचकर तीन हजार का कर्ज़ अदा किया। बोर्ड के दफ़्तर में पचचीस रुपये माहवार की नौकरी कर ली। अब वह जगह चालीस रुपये माहवार की हो गई है। इसी की बची आमदनी से उन्होंने शेष दो बहनों का विवाह भी कर दिया।

इन झगड़ों से अलग होने पर भी उनको चैन नहीं। चालीस रुपये महीने की आमदनी, और आठ आदमी—स्त्री, माँ, पाँच लड़के—खानेवाले! बड़ा दस बरस का हो चुका है। वह स्कूल जाता है। उसके लिए कागज़, किताब, कपड़ा, इत्यादि चाहिए ही। आप दफ्तर जाते हैं। बिना कोट-पैंट के नौकरी से हाथ धो बैठने का भय है। जो लड़का गोद में है वह तो माँ का दूध पी लेता है, पर जो उससे जरा बड़ा है उसके लिए बाजार से दूध आता है। शेष दो लड़के नङ्गे फिरते हैं। पर मां और स्त्री तो नङ्गी नहीं रह सकतीं। बाहर से भी मिलने-जुलनेवाली स्त्रियां आती हैं। बिना कुछ अच्छे कपड़ों के भी तो काम नहीं चलता। इन्हीं सब बातों से ऊबकर बाबू कालीचरण ने दफ़्तर जाने के पूर्व जो बातें अपनी स्त्री से की, वह पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं।

३

यों तो गरमी का मौसम बहुत खराब होता है। पर यदि वह गङ्गा के किनारे बरगद के पेड़ के नीचे काटना हो तो सब मौसमों से अच्छा है। स्वामी सच्चिदानन्द बड़ की ऐसी स्निग्ध छाया कब छोड़ सकते थे। और फिर पास ही गङ्गा जी भी बह रही हैं। माई लोग भी नित्य स्नान करने आती हैं। अतएव किसी बात की कमी नहीं है। तीन चेले हैं। चौथे आप। कहीं आना-जाना नहीं पड़ता और न कुछ पूजा ही

पाठ करते हैं। फिर भी भोजन की कमी नहीं रहती। खुद खाते हैं और दस आदमियों को और खिलाते हैं। दोनों वक्त भांग छनती है। शाम को भगवत-भजन होता है। ऐसे स्वामी बाबाजी उस शहर में कभी न आये थे। सैकड़ों स्त्रियां उनकी कृपा से सन्तानवती होगई हैं। सैकड़ों बेकार बैठे लोगों को रोजगार मिल गया है। सैकड़ों स्त्रियों ने अपने पतियों को बस में कर लिया है। इन सब बातों के उनके पास बड़े बड़े सार्टीफिकेट भी मौजूद हैं। प्रातःकाल तो स्त्रियों की इतनी भीड़ रहती है कि बाबाजी का काला शरीर ऐसी शोभा देने लगता है मानों गोपियों के बीच में कृष्ण बैठे हैं।

कालीचरण इन स्वामीजी को अपने बाप के समय से ही जानते हैं। इनकी गोद में खेले भी थे। अतएव उनसे अपनी आन्तरिक स्थिति कहने में उन्होंने कोई बुराई न समझी। शाम को जब वे वहां पहुँचे तो स्त्रियों की खासी भीड़ थी। कालीचरण को देखते ही बाबा जी ने पूछा—"बेटा, क्या है, कैसे आये?" कालीचरण ने कहा—"स्वामीजी! क्या कोई ऐसी भी तरकीब है जो स्त्री को बन्ध्या बना दे और उसके बच्चे न पैदा हो सकें?"

कालीचरण के ये वाक्य सुनकर सब लोग सन्न हो गये। निश्चय ही इसका किसी कुमारी अथवा विधवा स्त्री के साथ अनुचित सम्बन्ध है, नहीं तो क्यों ऐसे प्रश्न करता!

बाबाजी ने भी सोचा—"ज़मीदार का लड़का है। कहीं चित्त मचल गया होगा।" एक वयस्क स्त्री बैठी थी। उसने कहा—"छिः छिः कैसा कुकर्म है। हाय! क्यों अधर्म की बात करता है। किसी का धर्म धूल में मिलाकर क्या पायेगा!" इधर वह कालीचरण को बुरा-भला कह रही थी, उधर पुलिस का एक दल आ पहुँचा और उन बैठी हुई स्त्रियों में से एक विधवा को गिरफ़्तार करने का उद्योग करने लगा। कालीचरण सिटपिटा गये। वे उस स्त्री को भली भाँति जानते थे। वह उन्हीं के पड़ोस में रहती थी। उसके विषय में वे सिर्फ़ इतना जानते थे कि वह विधवा है, तथा उसके घर में उसकी बूढ़ी माँ के सिवाय और कोई नहीं है। उन्होंने उस अश्रु-पूर्ण विधवा को संकट में देख उसकी सहायता करना अपना कर्तव्य जाना। पर उनको यह ज्ञात न था कि दो दिन पहिले जो नव-जात शिशु सड़क पर मरा हुआ पड़ा था, वह इसी का था। नतीजा यह हुआ कि पुलिस ने गुस्से में आकर इनको भी गिरफ्तार कर लिया। बाबाजी और उस वयस्क स्त्री ने जब कहा कि अभी अभी यह लड़कों की पैदाइश रोकने की युक्ति पूँछ रहा था तब तो पुलीस को, चाहे इसमें कुछ भी सत्यता न हो, उनको भी गिरफ़्तार का काफी कारण मिल गया।

कालीचरण बहुत सच्चरित्र आदमी थे। उन्होंने कभी किसी

स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखा तक न था। ऐसा लक्षण और स्त्री हत्या करने या कराने के दोष ने उनको बेहोश कर दिया।

इधर यह हाल था उधर भुवनबाला के पुत्र उत्पन्न हुआ। कालीचरण की माँ बड़े लड़के के साथ उनकी तलाश में आई तो उनको पुलिस के हाथ गिरफ़्तार पाया। आपत्तियों का सामना करते करते उसका कलेजा सूख चुका था। वह वैसे ही बावली सी इधर-उधर घूमा करती थी। पुत्र की गिरफ़्तारी उसके लिए असह्य हो गई। पास ही एक ईंट पड़ी थी, उसने वही उठाकर अपने सिर पर पटक ली। अपने तप्त रुधिर के छींटों से वह भयभीत विधवा अपना मुँह सिञ्चित कर सर्वदा के लिए सो गई।

माता को मरते देख कालीचरण का रहा-सहा साहस भी जाता रहा। माता के मोह और अपमान की ज्वाला ने उनका ध्यान उसी खूनी ईंटे की ओर आकर्षित किया। उन्होंने भी वही ईंटा उठाकर सिर पर पटक लिया। रुधिर बहा, शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा; पर प्राण न निकला।

४

उपरोक्त घटना को आज पूरे छः महीने हो गये; पर कालीचरण के सिर का घाव अच्छा न हुआ। उस विधवा के बयान से वे निर्दोष तो छूट गये; पर नौकरी से हाथ धो बैठे।

घाव भर जाता, तो नौकरी फिर से मिल सकती थी। साहब उनको बहुत मानता था; पर घर बैठे तनख्वाह देना तो उसकी भी शक्ति से बाहर की बात है। भुवनबाला भी अब बीमार रहती है। वह लड़का, जो उसी दिन पैदा हुआ था जिस दिन कालीचरण घायल हुए थे और उनकी माँ मरी थी, अब इस संसार में नहीं है। सब से बड़ा लड़का, जो अभी ग्यारह बरस का भी नहीं हुआ, मजदूरी करने जाता है। दो आने रोज लाता है। इसी में घर भर किसी प्रकार गुजर करते हैं। कालीचरण ने एक दिन शाम को उसको बुलाकर कहा—"बेटा! तुम पाँच भाई हो, तुम पाँचों में सब से बड़े हो। अतएव तुम से पूछता हूँ। बताओ क्या करें? क्या खायँ और तुम्हें तथा तुम्हारे भाइयों को क्या खिलावें? अच्छा हो यदि तुम सब भाई ईसाई हो जाओ। मैं अपनी आँखों के सामने तुम सब को खाता-पीता देख लूँ। बस मेरी यही अन्तिम अभिलाषा है।" फिर उन्होंने अपनी स्त्री से कहा —"प्रिये भुवनबाला! मैं तुम्हारे योग्य कदापि नहीं था। मेरे साथ तुम्हारा विवाह करके तुम्हारे पिता ने जो भूल की है उसका प्रायश्चित्त तुमको करना पड़ रहा है। मैंने तुमको कभी सुख से नहीं रक्खा। मैं अपनी कमजोरियों को पहिले ही से जानता था। इसीलिए मैं विवाह ही नहीं करना चाहता था। पर माता-पिता तथा साथी-सङ्गियों ने न माना और तुमको गृह-

[illegible] झेलने के लिए हमारे साथ जकड़ दिया। यह मैं जानता हूँ कि माँ अपने बच्चों को बहुत प्यार करती है और जीते जी उनसे अलग नहीं हो सकती। परन्तु सोचो तो, अब तुम इन बच्चों को अपने साथ कैसे रख सकती हो। घर में खाने को कुछ भी नहीं है। इनके भूखों मर जाने से तो यही अच्छा है कि इनको ईसाइयों के हाथ में दे दिया जाय। पढ़ेंगे, लिखेंगे, बड़े हो जायँगे तो आराम से रहेंगे। मेरी जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं, आज मरूँ या कल; और जीता भी रहा तो कोई लाभ नहीं। कहीं से चार पैसा कमा के भी तो नहीं ला सकता। तुम अकेली रह जाओगी, कहीं मेहनत-मजदूरी करना, किसी प्रकार यह जीवन व्यतीत हो जायगा। हाय! गरीब लोग क्यों सन्तान की इच्छा करते हैं—जो बच्चों को खिला-पिला नहीं सकते, उनको पढ़ा-लिखा नहीं सकते, उनको कपड़े-लत्ते नहीं दे सकते—ईश्वर ऐसे मनुष्यों को कोई पुत्र न दे। पैदा होते ही बेचारों को खाने-कमाने की चिन्ता पड़ती है। हमारा दस वर्ष का रामू क्या मजदूरी करने लायक है! हाय! हम संयम से क्यों न रहे। विवाह हो गया था तो भी हम संयम से रहते तो आज यह दशा क्यों होती।"

कालीचरण यह रो-रोकर कह रहे थे और उनका बड़ा लड़का तथा भुवनबाला उनके निकट खड़े होकर सब सुन रहे

थे। इसी समय सब से छोटा लड़का कई दिन से दूध न मिलने के कारण आंख उलटने लगा। भुवनबाला उसके शुष्क मुख में अपना स्तन निचोड़ने लगी। पर वहाँ दूध कहाँ! उसमें से तो शायद दो बूँद रक्त भी नहीं निकल सकता। माँ बाप की आंखों के सामने वह बच्चा मुँह खोले ही रह गया। शेष तीनों बच्चे मां से इसी समय रोटी मांग रहे थे। कालीचरण का कलेजा फट गया। उनसे यह दृश्य न देखा गया। उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। फिर वे कभी न खुलीं!

दो अनमोल रत्न

१

बुधिया अपने प्यारे पति को प्राणों से प्यारी थी। वह दिन भर मज़दूरी करता और बुधिया घर में रानी की भाँति मौज करती। उसने स्वप्न में भी न जाना कि दुःख किस चिड़िया का नाम है। वह बड़ी सुन्दरी थी। मियाँ आशिक-मिज़ाज उस पर निशाना लगाए बैठे थे। पर बुधिया की शुद्धहृदयता और अपूर्व पतिपरायणता ने उनकी दाल न गलने दी। वे गाँव के ज़मींदार थे। एक मामूली मज़दूर की औरत इतना नखरा करे। यह बात उनको असह्य हो गई। बुधिया का पति उन्हीं का दास है। आसपास के सभी गाँवों

में उनकी तूती बोलती है। फिर भी बुधिया जैसी मज़दूरिन हाथ में नहीं आती। इसमें उन्होंने अपना अटूट तिरस्कार समझा। पर करते क्या! लाचारी थी।

दो ही चार दिन पश्चात् बीवी के लड़का पैदा हुआ। मियाँ ने बुधिया को बुलवा भेजा। पहले जब कभी कोई सन्तान पैदा होती थी तो बुधिया की सास जाती थी; पर अब दुर्भाग्य से वह इस संसार में नहीं रही, अतएव बुधिया की बारी थी। बुधिया और उसका पति दोनों मियाँ की आदतों से खूब वाकिफ थे। उन्होंने इस अवसर पर अपनी आत्म-रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक समझा।

गाँव में हिन्दुओं की अच्छी बस्ती है। पर मियाँ आशिक-मिज़ाज से सब डरते हैं, जिसको जब चाहते हैं, बुरा-भला कह देते हैं। कोई चूँ तक नहीं करता। बुधिया की जात चमार है। गाँववाले हिन्दू मियाँजी को झुककर सलाम करते हैं; पर चमारों से बात तक नहीं करना चाहते। ऐसी अवस्था में बुधिया के पति को हिन्दुओं से किसी भाँति की आशा न रखना उचित ही था। क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, इसी सोच में दोनों पड़े थे कि स्वयं मियाँजी आ धमके। उन्होंने कहा—

बल्ला! तुझे इतना गुमान हो गया है कि अपनी बीवी को मेरे घर काम पड़ने पर भी नहीं भेजता।

बुधिया का पति—सरकार ! आज उसकी तबियत बहुत खराब हो रही है। भेजता क्यों नहीं। मेरी मां जाती ही थी।

मियाँ—हाँ, तेरी माँ तो जाती थी, पर तेरी औरत तो कभी नहीं गई ? अब सास के बाद यह काम उसी को करना होगा।

बुधिया का पति—सो तो ठीक है; पर ब-सबब बीमारी लाचारी है।

मियाँ—चाहे जो हो, उसे चलना पड़ेगा। अगर नहीं जाना था तो मुझसे पहिले ही कह देना था।

बु० का पति—मुझे क्या खबर थी कि बीबी के आज ही लड़का हो पड़ेगा।

मियाँ—अबे सूअर की औलाद ! जबान लड़ाता है ! उस को जाना होगा।

बु० का पति—मेरे जीते जी वह न जायगी।

बातें खतम भी न होने पाई थीं कि और कितने ही मुसलमान आपड़े और बुधिया को जबरदस्ती ले जाना चाहा। नतीजा वही हुआ जिसकी संभावना थी। बुधिया का पति उनके मुकाबले में अड़ न सका—उसने उनका सामना किया और अपनी प्यारी पत्नी की रक्षा में सदा के लिए संसार से अलग हो गया। पुलिस की मदद पास के नाके से आई; पर देर से। बेचारा चमार अपनी प्यारी पत्नी की आँसुओं से

भीगी गोद में दो बिलखते बालक छोड़ सदैव के लिए आँख मूंद चुका था। मियाँ लोग भग गए और बेचारी बुधिया को गला पकड़कर रोने के लिए पूज्य पति का मृतक शरीर भी न मिला। उसे पुलिसवाले डाक्टरी के वास्ते थाने में उठा ले गये।

२

बरसात का मौसम भी बड़ा विचित्र है। पानी का रिम-झिम बरसना, चपला का चमकना, बादलों का गरजना इत्यादि ऐसी बातें हैं जो एक ही समय में किसी को आमोद-प्रमोद के लिए फुसलाती हैं और किसी को दिल खोलकर रोने के लिए लाचार करती हैं। इसी मनोहर और भयानक, सुखदाई और दुखदाई, मृदुल और कठोर अनोखे ऋतु में बुधिया को अपने मायके जाना पड़ा। एक बच्चे को गोद में और दूसरे को पीठ पर लिये सारे दिन वह चली गई। शाम होते ही अँधेरी रात और घिरती हुई घनघोर घटाओं ने उसे आगे बढ़ने का साहस न होने दिया। लाचार होकर समीप के गाँव में उसने आश्रय लेना उचित समझा। गाँव में भले आदमियों की बस्ती है। चमार को अपने दरवाजे पर कोई खड़ा तक न होने देगा, यह उसे पहिले से ही मालूम था। अतएव वह चमारों की ही बस्ती में गई और ईश्वर की कृपा से उसे मिली चमारिन ने, जो अत्यन्त वृद्ध थी, अपने यहाँ ठहरा लिया। बुढ़िया थी

तो चमार; पर बड़ी ही सहृदय थी। उसने जो कुछ रूखा सूखा हो सका, दोनों बच्चों को खाने के लिए दिया। बच्चे दिन भर के भूखे थे। पेट में दाना पड़ते ही प्रातःकालीन कमल की भाँति खिल उठे। एक ने मुस्करा दिया और दूसरा, जो कुछ बड़ा था—

"घेरि घेरि आवै घटा काली रे! ननदिया।"

कहकर भूम भूम गाने जगा। बुढ़िया यह शिशु-संगीत सुनकर बड़ी ही प्रसन्न हुई; पर बुधिया को अपनी सुधबुध न रही। वह अनन्त पति-प्रेम में लीन हो गई। उसने मन ही मन कहा—"स्वर्ग में उनसे भेंट होगी ही, तब मैं अपनी करुण-कहानी सुनाऊँगी। वे रो देंगे और हमारा भोला मुलुआ उनके आंसू पोंछेगा।" यों ही विचार-धारा में बहते बहते उसे नींद आगई और वह दोनों बच्चों को अपनी छाती पर लिटा भूखी ही स्वप्न-संसार में विचरण करने लगी।

"बेगार! बेगार!! कोई मिलता भी है। सब हरामी के पिल्ले न मालूम कहां छिप जाते हैं। ईश्वर करे बेगार ढूँढ़ने की बेगारी दुश्मन को भी न करनी पड़े"—कहते हुए रामदीन जमादार चमरौटी में तीन बजे के तड़के ही आ डटे और बीस-बाईस चमारों को पकड़ लिया। किसी पर कुछ बोझा रक्खा और किसी पर कुछ। कमिश्नर साहब वहां से दिन भर के रास्ते पर पड़ाव डालनेवाले थे। वहां तक इन बेचारे

चमारों को, चाहे जैसे हो, जाना पड़ेगा। बुधिया भी इस बला से न बची। चौबीस घंटे की भूखी दुःखिनी पर एक बड़ा टीन का सन्दूक रख दिया गया। उसके दोनों बच्चों का क्या हाल होगा, वह क्या खायगी, अथवा वह अपने मायके कब पहुँच सकेगी, इस बात का किसी ने किंचित् भी ध्यान न किया। बुधिया के दोनों बच्चे उसे प्राणों से प्यारे थे। जीते जी वह उनको कैसे छोड़ सकती है। "रामदीन! क्या तू संतानहीन है? क्या तेरे हृदय नहीं? छी! छी! तुझे कुछ भी दया नहीं आती," कहते कहते बुधिया कमज़ोरी के कारण डगमगाकर गिर पड़ी। यह उसका हमेशा के लिए गिरना था। वह उठ न सकी। रामदीन उसे छोड़ चला गया। दोनों बच्चे, जो अभी चीख रहे थे, अब खुशी से फूल उठे। अपनी मां के ऊपर जा डटे और रोटी मांगने लगे। बुढ़िया को बड़ी दया आगई। उसने बची जूठी रोटी उन दुखिया मां के बच्चों को खिलाई। दोनों बड़े खुश हुए, और सारा कष्ट भूल गये।

शाम को उसी गांव में पादरी साहब का प्रवेश हुआ। पादरी हिन्दुओं को ईसाई बनाने का यत्न करता है, यह बात तमाम गांव जान गया है। इसीलिए पादरी साहब को गांव में रसद-पानी इत्यादि सभी बातों की बड़ी कठिनाई होती है। कमिश्नर साहब तो वे हैं नहीं कि जिसे चाहेंगे बेगार में पकड़

लेंगे। इसी से उन्हें आवश्यक नौकर-चाकर इत्यादि सब सामान साथ रखना पड़ता है। आते ही वे बुढ़िया की ज़बानी बुधिया की बीमारी का हाल सुन वहां जा पहुँचे। उसकी बड़ी दवा की; पर कुछ लाभ न हुआ। हां, मरते समय बुधिया को आराम अवश्य मिला। उसने कहा—

"पादरी साहब! तुम मेरे ईश्वर हो। तुम्हीं मोहन हो, गिरधारी हो, मोरमुकुटधारी बनवारी कुञ्जबिहारी तुम्हीं हो! मेरे ये दोनों बच्चे तुम्हारी शरण में हैं। यह मैं जानती हूँ, तुम ईसाई हो। इनको ईसाई कर लोगे। इनकी चोटी काट दोगे, इनको वृन्दाबनबिहारी की याद न करने दोगे, न सही—इनको भोजन तो दोगे, इनकी रक्षा तो करोगे, क्यों नहीं! इनके माता-पिता भी इनका पालन-पोषण नहीं कर सके, तुम इनके माता-पिता से बढ़कर हो," कहते कहते बुधिया ने अपने दोनों बच्चों का चुम्बन किया और पादरी साहब के हवाले कर दिया। पादरी साहब ने मन ही मन कहा—"अगर हिन्दू अपने इन दीन-हीन बच्चों की दशा पर तथा अपने इन अछूत भाइयों पर किंचित् मात्र भी दया रखते, तो आज हमारे हाथ ये दो अनमोल रत्न कभी भी न लगे होते।"

बुधिया फिर बोल न सकी, उसकी आखें खुली की खुली ही रह गईं। उनमें दोनों बच्चों की तसवीर खिँच गई। आंसू की एक एक लकीर दोनों आंखों से निकल गाल पर

होती हुई न जाने कहां चली गई। दिन डूबते डूबते यह अभिनय समाप्त हो गया। अन्धकार इतना हुआ कि बिजली भी न चमकी। सिर्फ इतना ही जानना शेष रह गया कि—"कल प्रातःकाल भी हम उन दोनों बच्चों को पहचान सकेंगे या नहीं।"

लोक-लाज

१

प्रयाग से थोड़ी दूर पर जमुना के किनारे एक छोटा सा गाँव है। आज-कल इसे भड़ौंच कहते हैं। किसी ज़माने में यह गाँव बड़ी उन्नति पर था। पुरानी इमारतों के खँडहर अब भी वर्तमान हैं। किन्तु अब यहाँ सिवाय किसानों की झोपड़ियों के और कुछ भी नहीं है। यहां के रहनेवाले क्षत्रिय हैं। उनका कहना है कि बलवे से पहले इनके पूर्वज इसी गांव के राजा थे। किन्तु बलवे में बागी हो जाने के कारण सरकार ने इनकी रियासत जब्त कर ली है। अब इनके पास थोड़े से खेतों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहा है।

इतना होते हुए भी इनमें अभी वही पुरानी बू भरी हुई है। ये लोग अब भी ठाकुर कहलाते हैं। कल्लू चमार इन लोगों को देखते ही चारपाई से उठ खड़ा होता है और झुक-

कर सलाम करता है। आसपास के गाँवों में भी बड़ी इज्जत है। जाति इतनी ऊँची है कि लड़का पैदा होने के पहले ही शादी करनेवाले टूट पड़ते हैं। लड़कियों के ये लोग जानी दुश्मन हैं। कुछ दिन पहिले वे पैदा होते ही उनका गला घोट देते थे; पर अब वैसा नहीं करते। हाँ, शादी कर देने के बाद उनको फिर कभी बुलाने का नाम नहीं लेते।

इसी गाँव के ठीक बीच में ठाकुर हाकिमसिंह का घर है। ठाकुर साहब गाँव में आजकल सब से धनी हैं और मुखिया भी यही हैं। इसीलिए इनका अच्छा दबदबा है। पर इनके कोई लड़का नहीं है। इनके बाद गाँव का मुखिया कौन बनेगा और बचे-खुचे धन को कौन भोगेगा, इस बात की चिंता कुछ न कुछ सभी को है। अभी तक यह आशा थी कि आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों अवश्य ही कभी न कभी लड़का पैदा होगा; पर स्त्री के मर जाने से आशा भी नहीं रही। पुरोहितजी की राय है कि अभी ठाकुर साहब अपनी एक शादी और कर सकते हैं। उन्होंने अपने ज्योतिष में बिचारा है कि अभी सौ बरस की उमर तक इनके लड़का हो सकता है।

२

भगवानदीनसिंह एक बैल की खेती करते हैं। घर में एक गाय भी लगती है। इसी का दूध पी-पीकर इनका लड़का

किशोरसिंह पहलवान होगया है। इस समय उसकी आयु पच्चीस साल की है; पर अभी उसकी शादी नहीं हुई है। इस बात की उसे बड़ी चिन्ता है। उसकी उमर के लड़के तीन तीन लड़कों के बाप हो गये; पर उसने अभी स्त्री का मुँह भी नहीं देखा। उसकी जाति घटिया है। चूल्हे के पास तीन सौ रुपये नक़द गड़े हुए हैं। फिर भी कोई शादी करने को तैयार नहीं होता। भगवानदीनसिंह उसका पिता इसी दुःख में स्वर्ग सिधार गया।

पिता के मर जाने पर सब काम किशोरसिंह पर ही पड़ा। माता पहिले ही से नहीं थी। अतः गाँव में उसको कोई प्यार करनेवाला न रहा। अगर कोई शादी करने को आता भी, तो लोग समझा देते कि बिना सास के घर में लड़की बिवाहना ठीक नहीं। बस सगाई गड़बड़ हो जाती। किशोरसिंह दिन भर काम करता, फिर रोटियाँ पकाता, तब कहीं अखाड़े पर जाने का मौका लगता। अगर स्त्री होती तो उसका आधा काम बट जाता और इतनी तकलीफ न होती। अब यह दुःख उससे न सहा गया। उसने अधीर होकर कहा—"जाति-बिरादरी में शादी नहीं होती, न सही। गैर-जात में तो होगी। यही न होगा कि जात से निकाल दिया जाऊँगा"।

कल्लू चमार की लड़की अपनी ससुराल से भाग आई

है। इस बात को किशोरसिंह भली भाँति जानता है। कोई कोई कहते हैं, उसका मर्द छोटा है। इसीसे वह ससुराल में नहीं रहती। मायके में उसके दिन बड़े मजे में कटते हैं। घिस्सू, पिस्सू इत्यादि से, खेत निराते-निराते, हमेशा ही रस भरी बातें हुआ करती हैं। फिर भला वह ससुराल क्यों जाय! मायके का यह शरबत योंही छोड़ दे!

इधर दो-तीन दिन से किशोरसिंह की नज़र कल्लू की लड़की से बराबर लड़ रही है। इस बात का शोहरा सारे गाँव में होगया। चमारों ने पंचायत की। कल्लू को भोज देना पड़ा। फिर भी उसकी लड़की न मानी। प्रेम ही तो है। उसके दरबार में सब बराबर हैं। बदनामी के डर से उसकी ससुरालवाले उसे अपने यहाँ अब बुलाते भी नहीं। यह उसके लिए और भी अच्छा हुआ। मानों सोने में सोहागा मिल गया।

३

आज कल्लू चमार के दरवाजे पर बड़ी भीड़ है। दारोगा साहब सबेरे से ही डटे हैं। एक तरफ पुलीस के सिपाही लोग हथकड़ी-बेड़ी लिये खड़े हैं। सामने ही अनमनी सी कल्लू की लड़की भी बैठी है। लोगों का कहना है कि कल जिस बच्चे के बारे में चौकीदार ने रिपोर्ट की थी, वह इसी लड़की के गर्भ से पैदा हुआ है। कुछ लोगों ने तो उसे नाले की

[illegible] शाम को जाते हुए देखा भी था। दारोगा साहब ने [illegible] सुजाते हुए कहा, "यह बच्चा तेरा है या नहीं?"

उसने कहा—"नहीं।" यह सुनते ही दारोगा साहब को गुस्सा आया और उन्हों ने कल्लू की लड़की को गाली देना आरम्भ किया। पुलीसवाले गाली देने में बड़े प्रवीण होते हैं। ऐसे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं कि फिर बस! मानों यह सब ये सीखकर आते हैं। क्या आश्चर्य जो सरकार ने गाली इत्यादि के सिखलाने का भी कहीं स्कूल खोल रक्खा हो! गाली से काम चलता न देख दारोगा साहब ने उसे पीटना शुरू किया। अब उसने कबूल किया कि 'हाँ!'

दारोगा—यह किस से पैदा हुई?

लड़की—मुझसे ही सरकार!

दारोगा—अरी उल्लू की पट्ठी! तेरे तो पेट से पैदा हुई, पर इसे पैदा किसने किया?

लड़की—सरकार! भगवान ने।

दारोगा—भगवान तेरे पास सोने आया था?

लड़की—नहीं।

दारोगा—फिर?

लड़की—फिर मैं नहीं जानती।

दारोगा—(डाँटकर) जानती क्यों नहीं—बता ! इसका बाप कौन है ?

लड़की—इसका बाप मेरा पति है ।

दारोगा—तो तूने इसे फेंका क्यों ? पति से पैदा हुई सन्तान कहीं फेंकी जाती है ? यह जरूर चोरी-छिपे की संतान है ।

लड़की—हां सरकार ।

दारोगा—फिर बताती क्यों नहीं ?

लड़की किशोरसिंह की तरफ देखकर चुप हो रही । दारोगा ने लड़की को ऐसा करते देख लोगों से पूछा कि किशोरसिंह पर किसी का शक तो नहीं है ।

गाँववालों ने कहा—"शक क्या ! यह किशोरसिंह से आज कई साल से फँसी है ।"

अब क्या था, सिपाहियों ने किशोरसिंह को कैद कर लिया । बेचारे की तरफ कोई बोलनेवाला नहीं था । चूल्हे के पास गड़े हुए तीन सौ रुपये आज काम दे गये । दारोगा साहब जेब गरम करके चलते हुए । मामला यहीं दब गया, पर यह हो गया कि किशोरसिंह कल्लू की लड़की को जीवन भर अपने साथ रक्खे । फेंका हुआ बच्चा भी उन को दे दिया गया । ईश्वर की कृपा से यह जीता-जागता बच गया था । इस का नाम फेंकीदेवी रक्खा गया ।

४

फेंकी बड़ी सुन्दर लड़की है । किशोरसिंह जात से निकाल दिया गया । गाँव में उससे कोई नहीं बोलता । पर फेंकी का रूप और पुष्प सा प्रफुल्लित मुख सब को मोहे लेता है । यही कारण है कि वह चमारी के पेट से पैदा होते हुए भी ठाकुरों के बच्चों के साथ खेलती फिरती है । ठाकुर हाकिमसिंह के हाते में लड़कों की बड़ी भीड़ लगी रहती है । फेंकी भी यहीं खेलने आया करती है । इस समय उसकी आयु दस वर्ष की है । दो ही साल के बाद वह जवानी के मैदान में कदम धरनेवाली है । इस गाँव में लड़कों का विवाह हो, चाहे नहीं; पर लड़कियों का लड़कपन ही में हो जाता है । लेकिन फेंकी का विवाह अब तक नहीं हुआ । इसका कारण पाठक जानते ही होंगे । जातिच्युत ठाकुर की लड़की है । कोई इसके साथ शादी करने को राजी नहीं है । चमारों के साथ भी इस की शादी नहीं हो सकती । कदाचित् चमारों के यहां इसे किशोरसिंह ब्याहेगा भी नहीं । इसी चिन्ता में बेचारा रात-दिन पड़ा रहता है ।

अपने हाते में खेलती हुई फेंकी को देख हाकिमसिंह अपने को न सम्हाल सके । यद्यपि इस समय इनकी उम्र साठ-पैंसठ की हो चुकी है फिर भी काम-वासना अभी नहीं गई । कभी कभी फेंकी को अपने पास बुलाकर उसे घंटों प्यार करते हैं ।

खाने के लिए फल इत्यादि देते और उसे गोद में बैठा लेते हैं। फेकी को उसके माँ-बाप भी शायद इतना प्यार नहीं करते। और करें भी तो मिठाइयाँ और केले कहाँ से पावें। नतीजा यह हुआ कि फेकी भी हाकिमसिंह को वैसा ही प्यार करने लगी। एक दिन गोद में खिलाते हुए फेंकी को चूमकर हाकिमसिंह ने कहा—"फेकी, तुम्हारा ब्याह कहाँ होगा?"

फेंकी—हमारा ब्याह न होगा।

हाकिमसिंह—क्यों?

फेकी—पिताजी कहते थे कि नीच जाति से पैदा हुई लड़की ठाकुर के साथ कैसे विवाही जा सकती है।

हाकिमसिंह—मेरे साथ तुम्हारा विवाह हो जाय तो? यह सुनकर फेकी लजा गई। वह कुछ न बोली। हाथ छुड़ाकर भाग जाने का यत्न करने लगी। मालूम होता था, वह भी इस प्रस्ताव को स्वीकार करती है। किन्तु फेकी! तू तो निरी लड़की है। तू क्या जाने, काम की मार कैसी होती है! शादी का सुख भला तुझे क्या ज्ञात? हाकिमसिंह की मिठाई क्या तुझे जवानी में मीठी मालूम होगी? छी! छी! हाकिमसिंह, तुम्हें एक फूल सी लड़की का जीवन नष्ट करने में कुछ भी संकोच नहीं होता? तुम आज मरो या कल! तुम्हारा कोई ठिकाना! फिर उसे आजन्म विधवा बनाकर क्या पाओगे? तुम क्या करो! तुम्हारा भी दोष नहीं। उसे कोई अपनाने

को तैयार ही नहीं। कमल भी तो कीचड़ से पैदा होता है, फिर उसे लोग क्यों छूते हैं।

५

भड़ौंच अब वह भड़ौंच नहीं रहा! अब उस की काया-पलट हो गई है। युरुप की लड़ाई में कितने ही भड़ौंच-निवासी काम आये। जो बचा उसके हाथ अच्छी रकम लगी। जो खेती करते थे उनके भी जेब से खन-खन होने लगी। गल्ला महँगा हो जाने से किसानों को बड़ा फायदा हुआ। जहां बेचारे भूखों मरते थे वहीं खाने और पहनने लगे। शहर के लोग चिल्लाया करते हैं—"गल्ला सस्ता हो, ऐसा हो, वैसा हो"। पर नहीं सोचते कि गल्ला सस्ता होने से उनके भाई किसानों को कितना कष्ट पहुँचता है। यही तो भारत की एक उपज है। यदि यही सस्ते भावों बिकने लगे तो देश के गरीब होने में क्या सन्देह! जो हो, गल्ला महँगा हो जाने से भड़ौंचवाले धनी हो गये।

किशोरसिंह भी फौज में भर्ती हुआ और लड़ाई में मारा गया। उसकी स्त्री को सरकार से दस रुपया माहवार पेंशन मिलती है। उसी से उसका काम चला जाता है। फेंकी अब जवानी हुई; पर अब वह विधवा है। हाकिमसिंह के अतिरिक्त किसी ने उसे नहीं अपनाया। बिवाह होने के दूसरे ही वर्ष बाद हाकिमसिंह का दुनियां से कूँच कर जाना मानी हुई बात थी।

फेंकी मूर्ख है। पर वह प्रेम के महत्व को समझती है। जिस फेंकी को पहले किसी ने नहीं अपनाया था, आज उसी के लिये सारा गाँव जान दे रहा है। हनुमन्तसिंह फौज में सूबेदारी के ओहदे तक पहुँच चुके थे। अब उन्होंने भी पेंशन ले ली है। पहले यह इसी फेंकी के साथ खेला करते थे। अब भी ये उसी के पड़ोसी हैं। आजकल ये पचास रुपया मासिक पेन्शन पाते हैं। इनका बड़ा लड़का रेल के दफ्तर में बड़ा बाबू है। फिर उन्हें सारा गाँव तरह देता रहे तो आश्चर्य ही क्या है? धन और मद आदमी को पागल कर देता है। इसी ने इनको भी पागल कर दिया। दुखिया फेंकी के ये पीछे पड़ गये। अब गाँववाले नहीं बोलते। चमार पंचायत नहीं लगाते। सच है, बलवान से सब डरते हैं। न्याय और धर्म के लिए लड़नेवाले बिरले ही होते हैं।

६

आज फेंकी गाँव के बाहर अपने बाग में आम बीन रही है। बरसात का दिन है। जमुना खूब बढ़ी हुई हैं। बाग कगार पर ही है। इसका कुछ न कुछ हिस्सा हर साल बाढ़ में गिर जाया करता है। यहीं खड़ी खड़ी फेंकी जमुना की शोभा देख रही है। एकाएक किसी ने आकर पीछे से फेंकी की आँखें मूँद लीं। फेंकी झटककर दूर खड़ी हुई और आँखों में

आँसू भरकर बोली, "भैया हनुमन्तसिंह! क्यों मेरा धर्म नष्ट करने में लगे हो!"

हनुमन्त०—कैसा धर्म?

फेंकी—पतिव्रतधर्म।

हनुमन्त०—यह सब कहने की बातें हैं। द्रौपदी के पाँच पति थे। कुन्ती का विवाह होने के पूर्व ही कर्ण पैदा हुए। आँख में पट्टी बाँधनेवाली गांधारी के पुत्र भी अपने बाप के नहीं थे। जब सतयुग में ही ऐसा था तो तुम कलियुग में क्या पतिव्रतधर्म की दोहाई पीटने चली हो!

फेंकी—छी! छी! क्या बकते हो! अपने पूर्वजों की ऐसी बुराई न करो।

हनुमन्त०—तुम तो फिर मानती ही नहीं हो।

फेंकी—पहले ही मेरे साथ शादी क्यों नहीं कर ली थी?

हनुमन्त०—पहले मेरे पिता स्वीकार न करते।

फेंकी—अब मैं स्वीकार न करूँगी। जिस लोक-लाज के भय से मेरी माता ने मुझे फेंक दिया था; और मेरा नाम फेंकी पड़ा, वही काम मैं फिर करूँ? यह असम्भव है।

हनुमन्त०—"करना पड़ेगा।" कहते कहते फेंकी का हाथ पकड़ लिया और उसे गिराकर उसके साथ बलात्कार करना चाहा। किसी तरह इज्जत बचती न देख फेंकी ने कहा, "अच्छा मुझे छोड़ दो। मैं राजी हूँ।" यह सुनते ही

हनुमन्तसिंह ने फेंकी को छोड़ दिया। मौका पाते ही फेंकी उठी और धड़ाम से जमुना में कूद पड़ी। देखते ही देखते वह सदा के लिए उसी में विलीन हो गई। हनुमन्तसिंह चित्रवत् सब देखते रहे। उनकी आखों के सामने अँधेरा छा गया और चारों तरफ से आवाज आने लगी—"जिस लोक-लाज के भय से मेरी माता ने मुझे फेंक दिया था, वही काम मैं फिर करूँ? असम्भव है।"

प्रेम-परिचय

१

प्रयाग में यमुनाजी के तट पर कातिक के महीने में प्रति वर्ष स्नान का बड़ा मेला होता है। पुरुषों की अपेक्षा इस मेले में स्त्रियां ही अधिक आती हैं। एक महीने के लिए बलुवा-घाट कंचन का घाट बन जाता है। प्रातःकाल से लेकर दस बजे दिन तक अच्छी भीड़ रहती है। यदि कोई आदमी तैरकर पानी में कुछ दूर तक चला जाय और फिर घाट की ओर देखे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि मानों रंग-विरंगे फूल खिले हैं और उन पर भ्रमर मधुरालाप करते हुए मँडरा रहे हैं।

मुहम्मद इशाक़ को बलुवाघाट से बड़ा प्रेम है। वे

मुसलमान होते हुए भी यमुना के बड़े भक्त हैं। मुसलमान होने की वजह से उन्हें घाट पर आने की आज्ञा नहीं है। इसलिए वे घाट से पश्चिम की ओर बहुत दूर जाकर स्नान करते हैं। घंटों बैठकर यमुना की शोभा देखते हैं, फिर चले जाते हैं। इनका यह प्रति दिन का काम है। शाम को फिर इसी प्रकार वे यमुना के किनारे आ डटते हैं और आधी रात तक चुपचाप बैठे रहते हैं। इसी ध्यान में मस्त रहने के कारण ये बी०ए० की परीक्षा में फेल भी होगये। माता-पिता बहुत नाराज हुए। दूसरे वर्ष से परिश्रम के साथ पढ़ने का वादा किया। पर कुछ उन्नति न दिखाई पड़ी।

इशाक़ अब किसी से बोलते भी नहीं। लोग उन्हें पागल समझते हैं। न मालूम किसकी चिन्ता में वे रात-दिन पड़े रहते हैं। माता-पिता उनकी यह दशा देख हताश हो गये; और उन्हें पढ़ाई का खर्च देना बन्द कर दिया। किन्तु इससे उनके चरित्र में कुछ भी परिवर्तन न हुआ। न उन्होंने किसी से कुछ माँगा और न कोई काम किया। यमुना के किनारे ज्यों के त्यों पड़े ही रहे।

२

सेठ अमरचन्द आज अपनी एकलौती पुत्री चन्दो के साथ यमुना-स्नान कर रहे हैं। किनारे पर बड़ी भीड़ है। जय-जयकार के साथ दक्षिणा की लालसा में पण्डे हाथ में कुश

लिये उनके सर पर चढ़ जाना चाहते हैं, दूध-फूलवाले अलग टूटे पड़ते हैं। बेचारे एक बार प्रेम से ईश्वर का नाम भी नहीं लेने पाते। एक बार उन्होंने सोचा कि सब को कुछ न कुछ देकर हटा दें। किन्तु ज्यों ही उन्होंने दो एक को कुछ दिया, यह भीड़ और भी बढ़ गई। सेठजी झल्ला गये और क्रोध में आ उन्हें धक्का देने लगे। पर वह भीड़ आसानी से हटनेवाली नहीं थी। जिन्होंने कुछ पाया था उनसे—और जिन्हें कुछ नहीं मिला था—उनसे मार-पीट होने लगी। डर के मारे स्नान करनेवाली स्त्रियाँ इधर-उधर भागकर जाने लगीं। एक पंडा इस बीच में दूसरे से ठोकर खा चन्दो के ऊपर जा गिरा। भयभीत चन्दो ने भी भागने का प्रयत्न किया; किन्तु जल्दी में वह बजाय किनारे आने के गह-राई की ओर चली गई और डूबने लगी। उसको डूबते देख और स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं। सेठजी की दृष्टि जब उधर गई तो वे अवाक् से रह गये। थोड़ी देर के लिए पंडों ने भी झगड़ना बन्द कर दिया और सम्पूर्ण घाट व्याकुल हो उठा। किसी की समझ में नहीं आया कि क्या किया जाय। न कोई नाव थी और न कोई तैरनेवाला। सेठ बेचारे गर्दन तक गहरे पानी में गये पर और आगे न जा सके। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली; और वे जोर जोर से रोने लगे। देखते ही देखते चन्दो अदृश्य हो गई। अब उसके डूब जाने में

कोई भी सन्देह न रहा। सारा कोलाहल सन्नाटे में परिणत हो गया।

इसी समय घाट के पश्चिम किसी के जल में कूदने का शब्द सुनाई पड़ा। सब लोग उसी ओर टकटकी बांधकर देखने लगे। एक दुर्बल शरीर का नवयुवक घाट की ओर तैरता हुआ दिखाई पड़ा; किन्तु देखते ही देखते वह भी अदृश्य हो गया! और लोग ज्यों के त्यों चित्रित से खड़े रहे। थोड़ी देर में पानी से बुलबुला सा उठता हुआ प्रतीत हुआ; और उसके साथ ही चन्दो फिर जल के ऊपर दिखाई पड़ी। उसके चेहरे पर मुर्दनी छा रही थी और नासिका से रक्त की धार बहती थी। सब लोग ईश्वर का स्मरण करने लगे। सेठजी ने एक बड़ा मन्दिर बनाने तथा ब्राह्मणों को भोज देने की प्रतिज्ञा की।

३

कई रोज के भूखे इशाक ने पानी में कूदकर चन्दो की जान तो बचाई, पर स्वयं बीमार हो गया। सेठजी ने उसे बहुत कुछ देना चाहा; पर उसने कुछ भी स्वीकार न किया। चन्दो उस दिन बिलकुल बेहोश थी। अतः वह अपने बचाने-वाले का कुछ भी परिचय न पा सकी। अच्छे होने पर उसने पूछा—"पिताजी, मेरी जान बचानेवाला कौन था?"

अमरचन्द—एक मुसलमान।

चन्दो—मुसलमान?

अमरचन्द—हाँ।

चन्दो—अगर वह हिन्दू होता ?

अमरचन्द—तो।

चन्दो—तो क्या ? कुछ नहीं!

यह कहते कहते चन्दो की आँखों में आँसू भर आये। और वह कुछ बोल न सकी।

अमरचन्द—बेटी, रोती क्यों है ? अच्छा हुआ, वह हिन्दू नहीं था। यदि वह हिन्दू होता तो वह भी तेरी जान न बचाता।

चन्दो—क्या मैं उसे एक बार देख सकती हूँ ?

अमरचन्द—क्यों नहीं। किन्तु अभी वह बहुत बीमार है। मैंने उसके लिए दवा इत्यादि की अच्छी व्यवस्था कर दी है। ईश्वर चाहेगा तो वह शीघ्र ही अच्छा हो जायगा। वह साक्षात् देवता है।

चन्दो—मैं उसे बहुत शीघ्र देखना चाहती हूँ।

अमरचन्द—अवश्य देखोगी।

४

पुत्र कैसा ही क्यों न हो—माता-पिता को नित्य दुःख ही क्यों न पहुँचाता हो—उसका प्यार हृदय से नहीं जा सकता। इशाक के माता-पिता भी अपने पुत्र का यह दुःख सहन न कर सके। दोनों, समय पर, प्रयाग पहुँच गये और तन-मन से

उसकी सेवा करने लगे। वे दोनों अपनी जान तक देकर अपने प्यारे पुत्र की रक्षा करना चाहते थे। ईश्वर को भी उनकी इस दशा पर दया आई और उसने इशाक को शीघ्र ही आरोग्य कर दिया।

आरोग्यता लाभ करने के पश्चात् इशाक फिर पूर्ववत् यमुना के किनारे जाने लगा। एक रोज वह यमुना किनारे बैठा हुआ तरल तरङ्गों के साथ क्रीड़ा कर ही रहा था कि पीछे से किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी। उसने ध्यान भङ्ग होते ही पीछे की ओर देखा तो उसे चन्दो अपने पिता के साथ खड़ी हुई दिखाई पड़ी। अमरचन्द को देखते ही इशाक उठ खड़ा हुआ और झुककर उनको सलाम किया।

चन्दो ने कहा—उस दिन हमारी जान आप ही ने बचायी थी ?

इशाक—नहीं।

चन्दो—फिर ?

इशाक—फिर क्या ? मैंने तुम्हारी जान नहीं बचाई थी, मैंने तो अपनी ही जान बचाने का उद्योग किया था। लेकिन वह व्यर्थ हुआ। तड़प-तड़पकर मरना ही पड़ेगा।

अमरचन्द—क्षमा कीजियेगा। हम आप का मतलब बिलकुल नहीं समझ सके।

इशाक—आवश्यकता भी नहीं है। मेरी आप इतनी

चिन्ता क्यों करते हैं। इस जन्म में मेरा सुधार सम्भव नहीं।

अमरचन्द—आप कुछ कहें भी तो। हम आप की उचित सहायता करने में एक भी बाकी न उठा रक्खेंगे।

इशाक—हाँ, ठीक है। इसके लिए मैं आप को धन्यवाद देता हूँ। किन्तु खेद है कि मुझे उचित सहायता की आवश्यकता नहीं।

अमरचन्द—फिर ?

इशाक—अनुचित।

अमरचन्द—यानी !

चन्दो—यानी आप अपनी प्यारी बेटी को फिर डुबो दें।

अमरचन्द—यमुना में।

चन्दो—नहीं।

अमरचन्द—फिर ?

चन्दो—'कहीं नहीं', कहते कहते उसकी आँखें डबडबा आईं।

अमरचन्द उसके हृदय का भाव समझ गये। वे बोल उठे—"इशाक, ऐसा नहीं हो सकता। मैं अपनी जान दे सकता हूँ। सर्वस्व त्याग कर सकता हूँ। किन्तु अपनी पुत्री का तुम्हारे साथ........."

इशाक—मैं कब कहता हूँ। इसी लिए तो मैं कुछ कहना नहीं चाहता था।

चन्दो—कहने में क्या हानि है ? अपने हृदय का हाल कह डालिये।

इशाक—हमारा हृदय तुम्हारे डूबने के साथ ही डूब गया। मैंने तो तुम को निकाल लिया। पर हमारा हृदय डूबा का डूबा ही रह गया। जब हृदय ही नहीं, तो हृदय का हाल कहाँ से कहूँ ?

अमरचन्द—मुझे ऐसा करने से कोई न रोक सकता था, यदि तुम हिन्दू होते।

इशाक—यथार्थ है।

अमरचन्द—फिर आप के दुःख दूर करने का कौन सा उपाय किया जाय ?

चन्दो—योधाबाई का भी विवाह तो किसी मुसलमान ही बादशाह के साथ हुआ था।

अमरचन्द—हुआ था। उस विवाह से राजपूतों के कुल में कलङ्क लगने के सिवाय और क्या हुआ।

चन्दो—मैं अपना विवाह किसी के साथ नहीं करूँगी।

अमरचन्द—यह मैं मान सकता हूँ। पर हिन्दू बाला का विवाह मुसलमान युवक के साथ होने की राय नहीं दे सकता।

इशाक—मेरी भी यही राय है।

चन्दो—फिर आप ऐसी प्रार्थना क्यों करते हैं ?

इशाक—इसलिए कि हमारा हृदय कमज़ोर है। हम

तुम को प्यार करते हैं। असल बात यह है कि जब से तुम यमुना नहाने आती हो तब से ही मेरी अवस्था बदल गई। पर मैंने तुम से कभी प्रेमभिक्षा नहीं माँगी और न कभी मागूँगा। मैं तुम्हारा आदर्श बिगाड़ना नहीं चाहता। पर करूँ क्या?—हृदय ही तो है, इसमें जो चित्र खिँच गया सो खिँच गया।

५

इशाक का उस दिन से कोई पता नहीं चला। चन्दो और उसके पिता ने उसकी बहुत तलाश की; पर सब व्यर्थ रहा। इशाक तो चला गया; पर उसकी तसबीर हृदय से न गई। समयानुसार चन्दो का विवाह बम्बई के प्रसिद्ध सेठ हाकिमचन्दजी के साथ हो गया। पर यहाँ वह आनंद नहीं था। वह चन्दो, जिसके लिए इशाक जान तक दे सकता था, हाकिमचन्द के लिए कोई वस्तु ही न थी। वह उससे कभी बोला तक नहीं—बेजोड़ विवाह का यही परिणाम होता है। हिन्दू-समाज को इसी बेजोड़ विवाह ने पतित कर रक्खा है। इतने प्रसिद्ध सेठजी की पत्नी होते हुए भी उसकी कोई इज्जत न थी। लाचार होकर एक दिन वह आत्महत्या करने के अभिप्राय से घर से बाहर निकल पड़ी। उसका इरादा था कि समुद्र में कूदकर मर जाए। जैसे ही वह समुद्र के किनारे पहुँची, डाकुओं का एक झुण्ड आया; और उसे पकड़ ले गया। ऐसी सुन्दरी स्त्री मोपलों ने कदाचित् ही कभी देखी हो। वे

उसे पकड़कर अपने सरदार के पास ले गये। सरदार ने चन्दो की ओर जैसे ही हाथ बढ़ाया, उसने कहा—"ख़बरदार, छूना मत।"

सरदार—तुमको हमारी स्त्री होना पड़ेगा।

चन्दो—कभी नहीं। प्रेम रहते हुए भी मैंने अपनी जाति का स्मरण करके मुसलमान के साथ शादी नहीं की।

सरदार—वह दिन गये।

चन्दो—कदापि नहीं। जीते जी वे दिन नहीं जा सकते।

सरदार यह सुन क्रोधित हुआ और उस अबला को ऐसा धक्का दिया कि वह गिर पड़ी। वह उसके साथ बलात्कार करना ही चाहता था कि किसी ने पीछे से उसके सिर में तलवार का ऐसा हाथ मारा कि वह धड़ से ज़मीन पर गिर पड़ा। सरदार का सिर गिरते ही चन्दो उठ खड़ी हुई। उसने देखा कि ख़ून से तर तलवार हाथ में लिये इशाक खड़ा है। चन्दो ने कुछ कहना चाहा; पर इशाक ने उसे रोककर कहा—"मौका नहीं है। जल्दी भाग जाओ। अपने धर्म की रक्षा करो। पति का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। वह कैसा ही क्यों न हो, उसकी सेवा में तत्पर रहो।" यह कहते कहते इशाक चन्दो का हाथ पकड़ एक ओर को भाग गया। सुरक्षित स्थान में जाने पर चन्दो ने रो-रोकर अपनी कथा सुनाई। इशाक ने उसे बड़ी सान्त्वना दी। चन्दो ने

आत्महत्या का विचार पलट दिया और घर वापस चली गई। पर एक रात और एक दिन उसे घर से निकले हो चुका था। अतः सेठ हाकिमचन्दजी ने उसे बदमाश कह घर से बाहर निकाल दिया और उसकी एक भी बात न सुनी। घबड़ाई हुई चन्दो बाहर गई और सामने से ट्राम आती देख सड़क पर लेट गई। ट्राम उसके ऊपर से निकल गई और उसने यह कह कर "ऐ इशाक ! यदि तू मुझे यमुना की गोद से न उठाता तो आज यह दशा क्यों होती", प्राण-त्याग कर दिया।

घटनास्थल पर शीघ्र ही इशाक भी पहुँचा। पर चन्दो मर चुकी थी। अब इशाक से न रहा गया। उसने वही खूनी खंजर—जो कुछ समय पहिले डाकू सरदार पर चल चुका था—अपनी गर्दन पर फेर दिया। इस प्रकार दोनों प्रेमी सर्वदा के लिए अपना आदर्श छोड़ स्वर्गलोक को सिधार गये।

टाल-मटूल

१

"दूसरे के घर जाने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं"—इस बात को पंडित रमाकान्त ब्रह्मा का वाक्य जानते थे। उन्होंने अपनी स्त्री को किसी के घर कभी नहीं जाने दिया। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ घर में न घुसें, इस बात का भी उन्हें पूरा ध्यान रखना पड़ता था। इसीलिए खिड़की तथा दरवाज़े सदैव बन्द रहा करते थे। घर भी बहुत छोटा था। एक छोटा सा आँगन और दो-तीन कमरे। यह दो आदमी के लिए काफ़ी था। मुहल्लेवालों पर भी उनका भरोसा न था। उनके घर के पास से जो निकलता, वही गाता हुआ चलता। बेचारे बड़े परेशान थे। पर करते क्या ? इससे सस्ता घर भी और कहीं मिलना कठिन था।

यह उनकी तीसरी शादी है। वे बुढ़ाई अवस्था में विवाह करने के पक्षपाती नहीं हैं। कई एक बूढ़ों को उन्होंने स्वयं विवाह करने से रोका है। पर स्वयं को न रोक सके। इसका कारण भी कुछ ऐसा ही आ पड़ा था, नहीं तो विवाह न करते।

वे पितृ-ऋण से दबे जा रहे थे। साठ की उमर पहुँची; दो दो पत्नियाँ मर चुकी थीं;—ऐसी अवस्था में मरने से पहिले

पितृ-ऋण से उऋण होने की युक्ति तिबारा विवाह करने के अतिरिक्त और क्या हो सकती थी। उन्हें सन्तान की उतनी लालसा नहीं थी जितनी ऋण से मुक्त होने की उत्कंठा। जो हो, वे अपने इस विवाह से संतुष्ट नहीं थे। पत्नी में कोई ऐब नहीं था, वह अत्यंत सुन्दरी थी, नज़ाकत की उसमें ज़रा भी कमी न थी। हँसती थी तो मुँह से फूल झड़ते थे। बुड्ढे का वह देवता के समान सत्कार करती थी। घर में खाने-पीने की कमी न थी। पंडितजी ने आर० एम० एस० की नौकरी की अवस्था में ही बहुत-कुछ रुपया बचा लिया था; और अब चालीस रुपये मासिक पेंशन भी पाते थे। फिर उदासी का कारण क्या? शायद यह कि—

"वृद्धस्य भार्य्या करदीपकेव"

अर्थात् बुड्ढे मनुष्य की स्त्री, हाथ में लिये दीपक के समान, दूसरों को ही लाभ पहुँचाती है। किन्तु स्त्री की चालढाल से ऐसा नहीं प्रतीत होता था। उसने कभी दरवाज़े से झाँका भी नहीं। मालूम होता था, उसे किसी बात का शौक ही नहीं है। दिन भर काम में लगी रहती। घूँघट को बुड्ढे पति मुँह पर से जब हटा देते तो हट जाता, नहीं तो सदैव हाथी की सूँड के समान झूलता ही रहता। ऐसी अवस्था में उसका विश्वास न करना भी मूर्खता थी। पंडितजी स्त्री-शिक्षा के विरोधी न थे। उन्होंने अपनी नवपत्नी को साधारण हिन्दी

पढ़ना-लिखना सिखाने का यथेष्ट यत्न किया। स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों से उनका घर भर गया। वे परदा-सिस्टम के भी विरोधी न थे; पर उनकी बुढ़ाई अवस्था में नवबधू किसी नवयुवक कलेवर पर मुग्ध होकर डूबते कुल पर कलंक न लगा दे—इससे उसको परदे ही में रखना उचित समझा। और इसीलिए मुहल्ले की अन्य स्त्रियों का आना-जाना भी बन्द रखा।

घर में एक गाय भी है। साल भर से उसने दूध देना बन्द कर रखा है; पर उसे अलग नहीं किया। स्त्री ने कहा भी कि तुम्हारा शरीर कमज़ोर है, या तो कोई नौकर रख लो या इसे बेच डालो। पर पंडितजी ने टाल-मटूल कर दिया। उनकी समझ में हिन्दू के घर में गाय का होना उतना ही आवश्यक है जितना देव-मन्दिर में पुष्प और बेलपत्र का। नौकर इसलिए नहीं रखा कि—

"विद्या नृप युवती लता इन्हें न सूझे जात।
बसे जो इनके पास ये ताही सो लिपटात।"

यह कहावत कहीं चरितार्थ न हो जाय।

२

पंडित रमाकन्त आज बड़े परेशान हैं। गाय ने नाक में दम कर रखा है। चिल्लाती है। खूँटा उखाड़ उखाड़ फेंक देती है। इधर-उधर भागने का यत्न करती है। पुचकारते पुचकारते

पंडितजी का मुँह सूख गया; पर गौमाता ने दया न की। कदाचित् इसे कोई बीमारी है, या किसीने नज़र लगा दी है। जानवरों के मामले में स्वयं अनभिज्ञ होने के कारण उन्होंने घिस्सू अहीर को बुलाने का निश्चय किया। घिस्सू ने आकर बड़े ग़ौर से गाय को देखा। उसने मुस्कराते हुए कहा—"पंडितजी, गैया उठान किहे बा। रोग-ओग कतौं कुछ नाहीं। कौनो साँड़ के देखावा।"

रमा०—साँड़ दिखलाने से कोई लाभ नहीं। यह दस बच्चे दे चुकी है। अब बुड्ढी हुई।

घिस्सू—नहीं महाराज, अबै ई एक दाँव तोंहके अउर दूध पियाई।

रमा०—मुझे तो जान पड़ता है, इसके कहीं दर्द है। देखो न जीभ निकालती है।

घिस्सू—अब का कहीं ? देशी चिरैया बिलाती भाखा। अरे महाराज! जल्दी कतौ लै जाव; नहीं तौ गाय बिगड़ जाई।

घिस्सू ने यह कहा ही था कि गाय खूँटा उखाड़कर भाग चली। दरवाज़ा खुला था। अतएव वह घर से बाहर होगई। बात की बात में सड़क पर जा पहुँची। रमाकान्त ने बहुत चाहा कि पकड़ लें; पर परिश्रम व्यर्थ हुआ। वह बढ़ती ही गई। उन्होंने घिस्सू को भी अपने साथ लेना चाहा; पर वह यह

कहकर कि "मुझे फुरसत नहीं है" चलता हुआ। आगे आगे गाय चली और पीछे पीछे रमाकान्त। थोड़ी दूर जाने पर एक साँड़ मिला। गाय खड़ी हो गई। उसने साँड़ की ओर बड़ी प्रेम भरी दृष्टि से देखा। कदाचित् वह साँड़ भी उसके हृदय की बात जान गया। धीरे धीरे रमाकान्त भी घटनास्थल पर पहुँच गये। उन्हें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने मन ही मन कहा—"चलो पाप कटा। अब ईश्वर ने चाहा तो फिर भर-पेट दूध पीने को मिलेगा।" वे हँस पड़े और गाय की गरदन से लटकती हुई रस्सी पकड़कर खड़े हो गये। गाय और साँड़ में जाने क्या क्या इशारे हुए, इसको पंडितजी समझ न सके। क्योंकि साँड़ थोड़ी ही देर में एक ओर को चलता हुआ और गाय आगे बढ़ने के लिए रमाकान्त को खींचने लगी। कदाचित् यह साँड़ छोटा था। उस हाथी सी गाय के लिए सर्वथा अयोग्य था। इसीलिए गाय को आगे बढ़ना पड़ा है। पंडितजी ने गाय को लिये लिये तमाम शहर छान डाला। एक नहीं, हज़ारों साँड़ मिले; किन्तु उस गाय के पसन्द कोई न आया। वह बढ़ती ही गई। पंडित जी के कान में कोई कहने लगा—

"जब जानवरों का यह हाल है तो मनुष्य कैसे ज़बरदस्ती किसी को प्यार कर सकता है। कर्त्तव्य-पालन की भी एक सीमा होती है। बिना पवित्र प्रेम के कर्त्तव्य-पथ से मनुष्य

भी च्युत हो जाता है।" रमाकान्त अपने को थोड़ी देर के लिए भूल से गये। वे मन ही मन कहने लगे—"आह! मैंने बड़ी भूल की। मैं उस फूल सी बालिका के सर्वथा अयोग्य हूँ। उसका पति क्योंकर कहला सकता हूँ। वह बड़ी भोली है। गरीब की लड़की है तो क्या हुआ! उसे अपनी मर्य्यादा का बड़ा ध्यान है। यदि वह मेरे मुँह में कारिख पोत दे तब भी मैं इस पाप से मुक्त नहीं हो सकता। छिः! छिः! मैं कितना नीच हूँ। मुझ जैसे नर-पिशाच ही ललना-कुल की लज्जा मिट्टी में मिला देने के कारण होते हैं। गोमाता तुमने मुझे पहिले ही यह शिक्षा क्यों न दी। नहीं नहीं, मेरा ही दोष है। क्या मैं अबोध था, या इतना भी नहीं मालूम था? हाय!" इसी उधेड़-बुन में वे गाय के साथ साथ मालूम नहीं कहाँ पहुँच गये।

३

किशोरी गरीब की लड़की जरूर थी; पर उसे यह स्वप्न में भी ज्ञात न था कि वह किसी मृत्यु के पंजे में ग्रसित वृद्ध के गले में बाँध दी जायगी। उसे बहू बनने की अभिलाषा थी। वह सास के ताने सुनने के लिए लालायित हो रही थी। उसने समझ रक्खा था कि ससुराल स्वर्ग से भी बढ़कर होती है। घूँघट काढ़कर चलना, नाक-भौं चढ़ाना, ज़रा ज़रा सी बात पर रूठ जाना, ननँद, देवरानी, जेठानी, सखी-सहेली, सब से

मटक-मटककर बातें करना, इत्यादि बातों का उसे पति से भी कहीं अधिक ध्यान था। वह इन सब बातों के न होने के कारण मन ही मन कुढ़ रही थी। रमाकान्त को देखते ही वह सहम जाती और हृदय कांप उठता। रमाकान्त जब से विवाह कर लाये हैं, उसे सूरज की रोशनी भी एक बार देखने का अवसर नहीं मिला। रात में वह तारे भले ही गिन ले, इसके सिवाय उसका वाह्य प्रकृति से कुछ भी सम्बन्ध न रहा। वह प्रकृति की गोद में पलकर बड़ी हुई थी। हरे-भरे खेतों में वह सुबह से शाम कर देती थी। पेड़ों की डालियों पर घंटों बैठ कोयल की भांति कूका करती थी। अब वह सुख-स्वप्न जाता रहा। इस बन्दीगृह में प्रवेश करके निकलना उसे कठिन जान पड़ा। रमाकान्त उसे राहु की भांति सम्पूर्ण निगल जाने को उद्यत थे। ऐसी अवस्था में उसके लिए दरवाजे से झांकना तक असम्भव था। किन्तु आज गोमाता ने उसके ऊपर बड़ी कृपा की। उसने दरवाजा जरा सा खोलकर सड़क की ओर देखा। सहसा उसके कान में एक गीत सुनाई पड़ा—

"जब हुए मिलने के लायक,
तब तो शरमाने लगे।"

किशोरी ने झट दरवाजा बन्द कर लिया। उसको मालूम हुआ कि एक बड़ा काला सांप जीभ लपलपाता हुआ फन काढ़े उसे काटने के लिए दौड़ा आ रहा है। फिर उस की हिम्मत

दरवाजा खोलने की न पड़ी। गीत भी एक बार से अधिक सुनाई न पड़ा। यह आवाज उसे बहुत दिनों से परिचित थी। यह कालीचरणसिंह की आवाज थी, जो स्थानीय कालेज में पढ़ते थे। पं० रमाकान्त को गाय इत्यादि बांधने में बड़ी सहायता देते थे। लड़कपन में काली को रमाकान्त तथा उनकी द्वितीय पत्नी ने अपनी गोद में खेलाया था। इसी से उसको वे अब भी उसी प्रकार मानते थे। काली हृदय का इतना काला होगा, इस बात को मानने के लिए वे तैयार न थे।

४

आधी रात गये खून से तर रमाकान्त घर आये। उनके हाथ में रस्सी और खूँटा अब भी था; पर गौमाता झटककर भग गई थीं। फुन्दी में हाथ पड़ जाने के कारण बूढ़े रमाकान्त कुछ दूर तक घिसटते चले गये। अन्त में रस्सी टूट जाने से वे एकाएक गिर पड़े। खोपड़ी फट गई और सारा बदन खून से तर हो गया। किशोरी इन्तजार में तब तक जागती रही। घर पहुँचते ही रमाकान्त ने कहा—"अब रस्सी और खूँटा फजूल है। इसे मैं नाहक वापस लेता आया। गाय तोड़ाकर भग गई।" किशोरी ने मुस्कराते हुए कहा—"मुझे बाँध देना। स्त्री और गाय में क्या कोई भेद है?"

यद्यपि किशोरी ने यह बात मजाक में कही थी; पर रमाकान्त के दिल पर इसकी बड़ी चोट लगी। उनके मुख से एक लम्बी आह के साथ यह निकला—

"जब यह रस्सी एक पशु को ही नहीं बांध सकी तो तुम्हें क्या बांधेगी। तुम्हें हमने जिस रस्सी से बाँधने का प्रयत्न किया है वह बड़ी ही कमजोर है। तुम जब चाहो उसे तोड़ सकती हो।"

वह इतना ही कह पाये थे कि उनका गला रुँध गया और डगमगाकर वे जमीन पर गिर पड़े। किशोरी ने उन्हें उठाने के लिए जैसे ही हाथ बढ़ाया, उसका हृदय कांप उठा। उसे मालूम हो गया कि अब पतिदेव के जीवन-दीप का सारा तेल समाप्त हो चुका है और मुझे अँधेरे में ही सम्पूर्ण यात्रा समाप्त करनी होगी। काली का घर पास ही था। आहट पाते ही वह दौड़ा हुआ आया। यों तो उसका स्वभाव छिछोड़ा था; पर वह बड़ा ही उत्साही और सदाचारी नवयुवक था। उसने दिन में जो गीत गाया था, उस पर उसे बड़ा खेद हो रहा था। उसने बार बार चाहा कि स्वयं पं० रमाकान्त से अपनी भूल कह उनके द्वारा किशोरी से माफी माँगूँ। तिरस्कार में कुछ ऐसी ही शक्ति होती है जो मनुष्य को पशु से देवता बना देती है। यदि किशोरी उसका तिरस्कार करते हुए दरवाजा बन्द न करती तो कदाचित् वह अपनी इस पैशाचिक वृत्ति पर इतना पश्चात्ताप न करता। कालीचरण किशोरी के चरणों पर

गिर पड़े और गिड़गिड़ाकर बोले—"माता! बड़ी भूल हुई, मैं पंडित रमाकान्त को अपने पिता से भी बढ़कर मानता हूँ। उनकी गोद में खेलते समय एक बार मैंने उनकी डाढ़ी के बाल तक गिनने का प्रयत्न किया था। उनकी स्त्री को (तुम्हें) कुदृष्टि से देखना! छिः! छिः! ऐसे घोर पाप का बीज क्यों इस हृदय में अंकुरित हुआ! माता क्षमा करो।"

किशोरी कुछ न बोली। चित्रवत् खड़ी रही। उसकी आँखों से आँसू के कतिपय बूंद चरणों में पड़े हुए काली के मस्तक पर टपक पड़े। कालीचरणसिंह ने अनुभव किया कि किशोरी ने उनको क्षमा कर दिया है।

५

गाय लौटकर घर आगई पर वृद्ध रमाकान्त की जान न लौटी। वह किशोरी के मस्तक पर वैधव्य का टीका लगाने के ही लिए कदाचित् रुकी थी और अपना कार्य्य सिद्ध होते ही चलती बनी।

कालीचरणसिंह अब वकील हुए हैं। उन्होंने अभी तक अपनी शादी नहीं की। कदाचित् उन्होंने प्रण कर लिया है कि बिना किशोरी सी सरलहृदया बालिकाओं को समाज के अनुचित अत्याचारों से मुक्त किये मैं अपना विवाह न करूँगा। किशोरी अब उन्हीं के यहां रहती है। कालीचरण की मा उसको बेटी कहकर पुकारती है; पर वे दोनों ही को माता

के नाम से पुकारते हैं। उनकी युगल माताएँ विवाह करने के लिए बहुत जिद्द किया करती हैं; पर वे जाने क्यों यह कहकर, कि जिसके दो दो माताएं हैं, उसके हृदय में इतनी गुंजाइश कहां है कि वह उनके बीच में एक बधू भी बिठला सके, टालमटूल कर दिया करते हैं।

लाड़िली

१

"मैं पैरों पड़ती हूँ, मुझे छोड़ दो!"

"देखता ही कौन है ?"

"हो या न हो, मुझे जाने दो"।

"जरा देर बैठो, अभी चली जाना। तुम तो शान ही बहुत करती हो"।

"बाप रे बाप! दादा बगलवाले ही कमरे में पड़े हैं!"

उपरोक्त बातें एक युवक और युवती में—जैसा कि पाठक भी अनुमान करेंगे—हो रही हैं। बातें समाप्त भी न होने पाई थीं कि 'काँ'! से एक बड़ा कौवा बोला। युवक ठिठक गया; और युवती घबड़ाई हुई ऊपर के कमरे में चली गई। छत पर पहुँचते ही लाड़िली, जैसा कि अब हम उसको कहेंगे, ईश्वर

से प्रार्थना करने लगी। उसने मन ही मन कहा—"हे प्रभो, यह तुम्हारी ही कृपा थी, नहीं तो आज इस दुपहरी में ······ हाय"! कहकर वह कमरे में इधर-उधर टहलने लगी। पसीने से उस की देह तर हो रही थी। बटन दबाते ही बिजली का पंखा खुल गया; और आधे घण्टे के पश्चात् उसकी तबियत सुधरी सी मालूम होने लगी।

उसे उपन्यास पढ़ने का शौक था। उसे ऐसी कितनी ही घटनाएँ पढ़ने का अवसर मिल चुका था। पलँग पर लेटते ही उसकी नजर एक किताब पर पड़ी, जिसे वह रात में खतम न कर सकी थी। उसने उसी किताब को उठा लिया। किताब का नाम था "मयंकमोहिनी" और लेखक का "रमेश"। लेखक का नाम देखते ही लाड़िली फिर काँप उठी। उसने किताब को इतने जोर से फेका कि वह आँगन में जा गिरी। वही कौवा फिर बोला और कुछ फड़फड़ाने की आवाज़ आई। लाड़िली ने बाहर निकलकर देखा कि कौवा आँगन में रक्खी हुई जूठी थाली में से एकान्त पाकर कुछ बचा हुआ भात खा रहा था। लाड़िली को बड़ा अफसोस हुआ। इसी कौवे ने तो, कुछ देर हुई, उसकी रक्षा की थी और इसी को उसने किताब खींचकर मारा। मरते हुए कौवे ने बालिका को आते देखा। उसके पंखों में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह उड़कर भाग जाय। वह ज्यों का त्यों थाल

में पड़ा रहा। मानो वह कहता था—"संसार बड़ा स्वार्थी है। आज मैंने दूध-भात खाने का काम किया था; पर जूठा भी पेट भर न खा पाया।" बालिका की आखों से आँसू बहने लगे। ठीक इसी समय उसके सामने एक बन्द लिफाफा आ गिरा। वह लिफाफे और कौवे को लेकर फिर ऊपर चली गई।

२

रमेश ने मन ही मन कहना आरम्भ किया—"उसकी चाल-ढाल से तो मालूम होता था कि वह भी मुझे उतना ही प्यार करती है जितना मैं उसे करता हूँ। मैंने उसके लिए—एक मात्र उसी के लिए—इतने उपन्यास खरीदे। यही नहीं, मैं ने स्वयं भी चार-पाँच ऐसे उपन्यास लिखे, जिनको पढ़कर वह कम से कम यह तो जान जाय कि मैं उसे इतना प्यार करता हूँ। फिर इन उपन्यासों के लिखने में इतना परिश्रम करना पड़ा कि मैं पारसाल इसीलिए एम० ए० की फाइनल परीक्षा में बैठ नहीं सका। अफसोस! मुझे कब ज्ञात था कि वह मुझे इस प्रकार निराश करके चली जायगी। मैं आज भी उससे कुछ न बोलता; पर यह सुनकर कि इसी मास में उसका विवाह होगा, मुझसे रहा न गया—अब मैं इतना ही जानना चाहता हूँ कि वह भी मुझे प्यार करती है या नहीं और यदि नहीं तो मुझ में किस बात की कमी है।"

इतना कहने के पश्चात् रमेश ने जेब से फाउन्टेनपेन और नोटबुक निकाली और उसमें से दो-तीन सादे वरक फाड़कर इस प्रकार लिखना आरम्भ किया—

"प्रिये लाड़िली !

"मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त खेद होता है कि मैंने बलात् तुमको रोकना चाहा। इसका कारण लिखने की आवश्यकता नहीं है। तुमने इतनी कहानियाँ पढ़ी हैं कि तुम से प्रेम-पीड़ित व्यक्तियों का तड़पना छिपा न होगा। तुम को यह मालूम ही होगा कि तुम को मैं अपने प्राणों से भी बढ़कर प्यार करता हूँ। मैं अपने जीते-जी तुम्हारा विवाह और किसी व्यक्ति के साथ होता नहीं देख सकता। तुम्हें मैं—अपनी समझता हूँ और समझूँगा। यह दूसरी बात है कि तुम मेरा कोई ख्याल न करो। लिखना बहुत है; पर चित्त की वृत्तियाँ ठीक न होने के कारण पत्र यहीं समाप्त करता हूँ। अभी तक मैंने जितने पत्र लिखे हैं, तुमने सब का उत्तर दिया है। यह मेरा अन्तिम पत्र है—और कदाचित् आज का ही अन्तिम मिलन भी था। थोड़े ही दिन में हम तुम एक दूसरे से बहुत दूर हो जाँयगे। अतएव इस अन्तिम पत्र का उत्तर देने में कदाचित् कोई बुराई न होगी। केवल इतना ही जानना चाहता हूँ कि तुम भी मुझे प्यार करती हो या नहीं और यदि नहीं तो तुम्हारे भावी पति में ऐसी कौन सी बात है जो मुझमें नहीं है? मैं अब कदाचित् ही इस तरफ

आऊँ। पत्रोत्तर कालिज के पते से जरूर देना। एक विनय और है। किसी को ये बातें मालूम न होने पावें। क्योंकि इसमें मेरी अपेक्षा तुम्हारी ही हँसी अधिक होगी।

तुम्हारा—रमेश"

पत्र को लिफाफे में बन्द कर रमेश ज्यों ही छत पर जाने लगे, उन्होंने देखा कि आँगन में लाड़िली खड़ी है। उन्होंने उसके सामने लिफाफा फेंक दिया और घर से बाहर हो गये।

३

उपरोक्त घटना के तीन ही दिन बाद शहर में बड़े जोरों की हड़ताल हुई। रमेश का कालिज भी बन्द रहा। इसलिए नहीं कि उसे भी हड़ताल से सहानुभूति थी, बल्कि इस लिए कि कोई छात्र आया ही नहीं। उसी रोज से महात्मा गाँधी का असहयोग-संग्राम बड़े जोर-शोर के साथ आरम्भ हुआ। उन दिनों सरकार घबड़ायी सी थी। इसी से उसकी नीति भी बड़ी विचित्र थी। सरकार स्वयंसेवकों को जेल भी भेजती जाती थी और समझौता के लिए महात्मा गाँधी से आग्रह भी करती थी। विदेशी कपड़े जलाये जाने लगे। कितने ही वकीलों ने वकालत बन्द कर दी। कितने ही कालिज बन्द हो गये। रमेश का कालिज भी आजही कल में बन्द हो जायगा। ऐसी सम्भावना उस समय अनुचित न थी। यहाँ यह बतला देना भी आवश्यक है कि रमेश के पिता लाड़ली के बाप के प्राइवेट सेक्रेटरी

थे। लाड़ली के बाप एक बड़े व्यापारी हैं। कलकत्ता-बम्बई के अलावा चीन के पेकिन शहर में भी उनकी एक बड़ी दूकान थी। तथा बरार के प्रत्येक बड़े शहर में उनकी एक जिनिंग फैक्टरी है। वे असहयोग-अन्दोलन के पूरे विरोधी थे। स्वराज से उनको कोई लाभ नहीं। रमेश के पिता उनके प्राइवेट सेक्रेटरी होते हुए स्वराज का नाम तक नहीं ले सकते। रही बात रमेश की—उनके हृदय में उच्च विचार अवश्य हैं, पर लाड़िली दिल में इतना घर कर गई है कि वे कभी कभी कह उठते हैं—

तेरे बिना आजाद होना भी मुझे भाता नहीं।
तुझसे नहीं तो किसी से जग में रहा नाता नहीं॥

लाड़िली को याद करें या हिस्ट्री (इतिहास) याद करें। दोनों का याद करना जरूरी है। हिस्ट्री के बगैर काम चल भी सकता है; पर लाड़िली के बिना एक मिनट भी व्यतीत होना कठिन है। इसी बात ने उनको कालिज छोड़ने के लिए लाचार किया। दूसरे रोज के "इंडिपेंडैंट" में कालिज छोड़नेवाले विद्यार्थियों की लिस्ट में रमेश का भी नाम निकल गया।

"अपने पिया की मैं योगिन बनूँगी"

बार बार इसी वाक्य को गुनगुनाते हुए रमेश ने विदेशी वस्त्र दहन के दिन अपने सारे कपड़े जलने के लिए दे दिये और शुद्ध स्वदेशी खद्दड़ धारण कर मातृभूमि के सेवकों में सम्मि-

लित हो गये। उनका दिल मारे खुशी के उछल रहा था। इसलिए नहीं कि मातृभूमि के हित मरने जा रहे हैं, बल्कि इसलिए कि यदि शीघ्र ही भारत को स्वराज मिल गया तो अपने त्याग के अनुसार वे कम से कम गवर्नर तो अवश्य होंगे—और उस समय लाड़िली को ज़बरदस्ती अपनी बधू बना लेने में, सम्भव है, वे कामयाब हो जाँय। छिः! कितना कुत्सित विचार है।

रमेश के असहयोगी होते ही उनके पिता ने उनको अपने घर से पृथक् कर दिया। पर एक वकील श्रीयुत कमलाकान्त एम० ए०, एल० एल० बी० ने, जो स्वयं वकालत छोड़ चुके थे, उनको अपने यहाँ आश्रय दिया और उन्हें अपने पुत्र की भांति प्यार किया।

वकील साहब के घर में उनकी स्त्री व एक पुत्र के सिवाय और कोई न था। दम्पति आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे। अगर घर में कमी थी तो केवल इसी बात की कि अभी तक पुत्रवधू ने पदार्पण नहीं किया। वकील साहब की स्त्री का नाम गङ्गा और पुत्र का नाम देवव्रत था। कुछ ही दिनों में रमेश और देवव्रत में बड़ी घनिष्ठता हो गई। यहाँ तक कि अवसर पड़ने पर रमेश कह दिया करते थे—

"मैं संसार में केवल दो ही मनुष्यों को प्यार करता हूँ। एक देवव्रत को और दूसरा........" पूछनेवाले पूछ

ही उठते थे—"दूसरा कौन ?" इस पर वे हँस देते थे, और बातों में टाल देते थे। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि देवव्रत अपनी माता के सिवाय और किसी से परिचित नहीं था। वकील साहब उसे आदर्श बालक बनाना चाहते थे। अतएव उसे बाहर के मनुष्यों से बहुत कम मिलने दिया था। उसकी पढ़ाई भी घर ही पर हुई थी। अतएव वह बहुत ही भोला-भाला था और उसका हृदय साफ था। एक बात और थी—उसके और लाड़िली के चेहरे में बहुत भेद न था। उसे देखते ही रमेश को लाड़िली का ध्यान हो आता था। कदाचित् इन दोनों में इतनी घनिष्ठता हो जाने का मुख्य कारण यही था। एक दिन की बात है, जब रमेश और देवव्रत बैठे हुए किसो विषय पर बात कर रहे थे, पोस्टमैन ने पूछा—

"रमेशचन्द्र किसका नाम है ?"

रमेश—कहिये ! मुझी को लोग रमेश कहते हैं।

पोस्टमैन—एक रजिस्टरी चिट्ठी है। कालिज के पते से आई थी। वहाँ पता चला कि आपने पढ़ना छोड़ दिया और यहाँ रहते हैं। इसीसे यहाँ लाया हूँ।

रमेश—बड़ी मेहरवानी हुई।

पोस्टमैन ने पत्र उनके हाथ में दे दिया। पते की लिखावट देखते ही रमेश ताड़ गये कि यह लाड़िली का

पत्र है। पत्र पाते ही उनकी आखों से आँसू आ गये और मुँह क्रोध या ग्लानि—मालूम नहीं किसके कारण लाल हो गया। देवव्रत इसका कुछ भी कारण न समझ सके।

४

उस दिन शाम को पुलीस ने वकील साहब का घर घेर लिया। "रमेश के नाम वारंट है"—कहते हुए दारोगा साहब ने रमेश का हाथ पकड़ लिया। रमेश ने मुस्कुराते हुए कहा—"बन्दे मातरम् ।" इसके बाद उन्होंने आँखें मूँद ली और जब खोली तो देखा कि हाथों में हथकड़ी पड़ चुकी है। वकील साहब क्रोध से लाल हो गये; पर क्या कर सकते थे। गंगादेवी तो ज़ोर ज़ोर से रोने लगीं—देवव्रत इसी सोच में थे कि मैं क्यों न पकड़ा गया। उन्होंने दारोगा साहब से पूछा—"कल मैं भी तो इन्हीं के साथ था। फिर मेरे नाम का वारंट क्यों नहीं आया ? आप भूल तो नहीं गये ?"

दारोगा की आखों में आँसू भर आये। उसने देवव्रत का मुख चूम लिया और बोला—

"बेटा ! तुम अभी बच्चे हो। लड़कपन में मेरे भी ऐसे ही ऊँचे भाव थे। नहीं, मुझे याद आता है, इससे भी बढ़कर—आह ! इस पापी पेट को क्या करूँ ? और फिर मैं ही नहीं हूँ—घर में चार चार विधवाएँ हैं, स्त्री है, बच्चे हैं, उनको क्या खिलाऊँ ? जाओ लल्ला, लौट जाओ। हमारा

कलेजा पत्थर का है। इसमें दया हो सकती है; पर मुझे दया दर्शाने का अधिकार नहीं है।"

दारोगा की बातों से, एक बड़ी भीड़–जो यह दृश्य देखने के लिए एकत्रित हो गई थी—रो पड़ी। भीड़ के बीच से आवाज आई—

"पापी पेट! क्या तू ने ही इन माता के लालों को गुलाम बना रक्खा है।"

इसी बीच में रमेश ने देवव्रत से कहा—

"देव! मैं जाता हूँ। आजकल, बिना मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये ही, लोग जेल भेज दिये जाते हैं। यह हमारा तुम्हारा अन्तिम मिलन है।"

देव रो पड़े।

रमेश ने फिर कहा—देखो! भारत माता को कभी न भूलना।

देव—कदापि नहीं भूला सकता।

रमेश—और वह बात भी न भूलना।

देव—कौन सी?

रमेश—अभी से भूल गये?

देव—अच्छा! हाँ, समझ गया।

रमेश—क्या?

देव—यही कि हम लोग जब तक भारत-माता को पूर्ण

स्वतन्त्र न बना लेंगे, विवाह न करेंगे, ताकि हमारे बच्चों को यह न कहना पड़े कि हम गुलाम पिता के पुत्र हैं।

रमेश—बहुत ठीक; परन्तु..........

देव—परन्तु क्या?

रमेश—यही कि यदि माता-पिता दबाव डालें तो?

देव—मैं उनका कहना नहीं मान सकता।

रमेश—वे रोने लगें तो?

देव—मैं कुछ परवाह न करूँगा।

रमेश—यदि माँ कहे कि 'विवाह न करोगे तो मैं आत्म-हत्या करके मर जाऊँगी' तो?

देव—माँ भले ही मर जाय। वह तो छोटी माँ है—उसने केवल जन्म दिया है। यथार्थ माँ तो भारत-माता है। यदि माँ का बध करने से भी भारत माँ का कुछ उपकार है तो मैं उसे स्वयं मारने को तैयार हूँ।

रमेश—बहुत ठीक! यदि पिता तुम्हारे चरणों में अपना मस्तक रख दे।

देव—मैं ठोकर मार दूँगा।

रमेश—इतने जोर से कि सिर टूट जाये?

देव—हाँ!

रमेश—धन्य है! अब मुझे विश्वास है। अच्छा अब

बिदा दो। देवव्रत ने रोते हुए रमेश को बिदा दी; और वे देखते ही देखते आँखों से ओझल हो गये।

× × ×

वह रजिस्टरी चिट्ठी, जिसका ऊपर बयान आ चुका है, रमेश ने जेब में रखली थी; क्योंकि वे उसे देवव्रत के सामने पढ़ना नहीं चाहते थे। वह अब तक बन्द पड़ी थी। आज जेल की एकान्त कोठरी में पहुँचते ही उनको उस पत्र की याद आई। ईश्वर की कृपा से उनके कपड़े छीने नहीं गये थे। अतएव जेब में हाथ डालते ही पत्र ऊपर आ गया। उसमें लिखा था—

"रमेश!

उस दिन की बात मुझे आज भी याद आती है। यदि संसार में कोई वस्तु ऐसी है जिसे मैं प्यार करती हूँ, या कर सकती हूँ, तो वह केवल तुम्हीं हो। क्षमा करना—आज मुझे बेशरम होकर लिखना पड़ रहा है। मैं हिन्दू की लड़की हूँ। माता-पिता की इच्छा मेरी इच्छा है। मैं उनकी इच्छा का विरोध नहीं कर सकती। और न, जैसा कि आपने कुछ दिन पहिले लिखा था, आप के साथ छिपकर किसी ओर को भाग ही सकती हूँ। इसमें माँ-बाप का घोर अपमान है। मैं मर सकती हूँ, अपने प्राणों से प्यारे तुमको छोड़ सकती हूँ; पर उनकी परवाह न कर तुम्हारी स्त्री नहीं बन

सकती। मैंने तुमको अपना हृदय दिया है, धर्म नहीं; और न अपनी इज्जत। जिसके साथ पिताजी विवाह देंगे उसे मैं चाहूँ या नहीं—वही हमारा पति होगा, उसी को मैं पति की भाँति प्यार करूँगी। उस समय यह सम्भव नहीं कि तुम को भूल जाऊँ। हां, तुम को अपना भाई समझकर याद करूँगी—पति समझकर नहीं। एक बात और है। आज मैंने अपनी माता को पिताजी से कहते सुना था कि रमेश सब प्रकार लाड़िली के योग्य हैं। सम्भव है, पिताजी यही बात मान जायँ। पर जब तक कुछ निश्चय न हो जाय, मेरा आपका भाई-बहिन का ही सम्बन्ध रहना ठीक है। अब मैं आप से एकान्त में कभी न मिलूँगी। आशा है, आप उस दिन की धृष्टता का ध्यान न करेंगे; और एक बार दर्शन अवश्य देंगे।

आपकी—लाड़िली"

पत्र पढ़ते ही रमेश सन्न हो गये। उनका हृदय कहने लगा—"मैंने नाहक जल्दी की।" बाहर होते तो अभी अभी लाड़िली के घर चले जाते; पर जेल के जबरदस्त फाटक की ओर देखकर वे अवाक् से रह गये। उस समय उनकी क्या दशा हुई, इसका वर्णन करना सहज नहीं है। लाचार होकर यही कहना पड़ता है—

"किसमत की बदनसीबी को सैयाद क्या करे।
सिर पर गिरा पहाड़ तो फ़रियाद क्या करे॥

५

वकील साहब के घर में जब कोई स्त्री आती थी और देवव्रत को उसका पाँव छूने को कहा जाता था, तो वह प्रायः यही कहती थी—"बेटा बड़ा हो, बहू आवे, छमक-छमककर चले, वकील साहब को एक बार पुनः नवजात शिशु की तोतली बोली सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो।" यह सुन गङ्गा का हृदय गद्गद् हो जाता था और देवव्रत मुस्करा देता था। उस समय उसके हृदय-पट पर छमकती हुई बहू का चित्र खिँच जाता था और वह मन ही मन बड़ा प्रसन्न होता था।

अब उसे बहू की लालसा है या नहीं, यह बताना जरा कठिन है। हाँ, कभी-कभी हृदय में कुछ ऐसी भावनाएँ उत्पन्न अवश्य हो जाती हैं, जिनका अर्थ वह स्वयं भी नहीं समझ सकता।

जाड़ा बीता नहीं कि विवाह की बात-चीत होने लगी। कई जगह से विवाह तय हुआ; पर देवव्रत के इन्कार कर देने से मामला ढिसमिस रहा। अन्त में जब रायबहादुर गणेश दास की स्त्री स्वयं एक दिन अपनी कन्या के साथ पधारीं, तब तो गंगा ललच पड़ीं। कन्या देखने ही के योग्य थी। गंगा ने निश्चय किया कि चाहे जो हो, यह बालिका मेरी पतोहू अवश्य बनेगी। उसने देवव्रत से कहा—

"बेटा, कन्या बहुत ही अच्छी है। तू यदि अपने लिए

नहीं, तो कम से कम अपनी माता को खुश करने के लिए अवश्य विवाह कर ले।"

देवव्रत ने साफ इन्कार किया। जिससे जितना समझाते बना, समझाया; पर देवव्रत राजी न हुए। वकील साहब ने कहा—"देवव्रत नाम का यह असर ही है। भीष्मपितामह का भी तो पहले यही नाम था।" गंगा ने कहा—"तो उसकी माँ का भी तो गंगा ही नाम है। असल में तुम्हारा ही सब दोष है। तुम्हारा नाम शान्तनु होना चाहिये था।" वकील साहब ने कहा—"इसमें मेरा क्या दोष—यह मेरे पिता का दोष है। उनको यह सोच लेना चाहिये था कि मैं भीष्म जैसे पुत्र का पिता होऊँगा। मेरा नाम.........।"

इसी प्रकार दिल्लगी जारी रही। किसी ने ताने मारे, किसी ने समझाया, किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ; पर देवव्रत राजी न हुए—स्वदेश के सामने माता-पिता कोई वस्तु नहीं हैं—उन की हृत्तंत्री के तार रह-रहकर यही अलाप उठते थे। अन्त में गंगा ने यह सोचकर कि शायद यह ऐसा करने से मान जाय, उनके चरणों पर सर रक्खा। देवव्रत ने पैर हटा लिया। हृदय ने तो कहा कि हाथ बढ़ाकर माता को उठा लो और उनकी बात मान लो; पर रमेश के सम्मुख की गई प्रतिज्ञा ने हाथों को आगे न बढ़ने दिया। वे प्रतिमा के समान निश्चल भाव से खड़े रहे।

गंगा ने रोते हुए कहा—बेटा, तू इतना बे-रहम तो कभी नहीं था।

देवव्रत—अब तो हूँ।

गंगा—अच्छा! अब मैं तुझ से कभी कोई भी प्रार्थना न करूँगी। हाँ, इस बात का ध्यान रखना कि जो अपनी माता का निरादर करता है वह मातृभूमि के लिए प्राण ही क्यों न दे दे; पर उसका सच्चा भक्त नहीं कहला सकता। माता और मातृ-भूमि में घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः माता का तिरस्कार कर मातृ-भूमि की सेवा करना ऐसा ही है जैसे मन्दिर की मरम्मत कराना और मूर्त्ति को कुत्तों से चटवाना।

६

समय जाते देर नहीं लगती। लेकिन परिवर्तन एक पल में हो जाता है। रमेश जेल से छूटकर आये तो उनको एक नया ही संसार प्रतीत हुआ। वकील साहब का घर, जो पहिले शान्ति का सरोवर था, अब कलह का केन्द्र बन रहा था। जेल में रहकर उन्होंने जो कष्ट उठाये; और अपने देश-वासी अन्य भाइयों को जो कष्ट उठाते देखा, उसका तथा जेल के कर्मचारियों के व्यवहारों का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके हृदय में स्वदेश के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न हुआ। लाड़िली का स्मरण अवश्य बना रहा; पर स्वदेशानुराग के प्रचंड सूर्य्य के सामने वह दीप-शिखा सा प्रतीत हुआ। अस्तु। वकील

साहब के घर में अशान्ति देखकर उनको अत्यन्त खेद हुआ। उन्होंने देवव्रत से माता की आज्ञा मान विवाह कर लेने का बड़ा आग्रह किया; पर देवव्रत ने कहा—"कदाचित् आप कष्ट न सहन कर सकने के कारण अब स्वदेश-सेवा से मुख मोड़ रहे हैं।"

रमेश ने कहा—नहीं, अब मैं उसके लिए पहिले की अपेक्षा और दृढ़ता से तैयार हूँ।

देव—फिर आप मुझे विवाह करने के लिए क्यों कहते हैं?

रमेश—विवाह से कार्य्य में कोई बाधा नहीं उपस्थित हो सकती।

देव—क्या आप को यह पहिले नहीं ज्ञात था?

रमेश—ज्ञात था।

देव—फिर?

रमेश ने लाड़िली का पत्र, जो उन्होंने जेल में जाकर पढ़ा था, देव के हाथ में दे दिया। इसी समय गङ्गा का वहाँ पदार्पण हुआ। उसने कहा, "बड़ी ही सुन्दर वधू है। रमेश, तुम्हारी बात तो यह बहुत मानता था। एक बार तुम भी तो समझाओ।" रमेश कुछ कहने ही वाले थे कि गंगा ने उनके हाथ में एक चित्र दे दिया। यह लाड़िली का चित्र था। रमेश अवाक् से रह गये।

७

आज लाड़िली का विवाह है। रायसाहब के घर में बड़ी चहल-पहल है। नंगे सिर और नंगे पाँव रमेश इधर से उधर दौड़ लगा रहे हैं। उनके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की रेखा है। रमेश का परिश्रम और सीधा-सादा स्वभाव देखकर रायसाहब मन ही मन पछताते हैं। उनका हृदय कहता है—"तुमने रमेश के साथ अन्याय किया है। वह लाड़िली के साथ विवाह करने का अधिकारी है। उसके जेल से वापस आने तक तुमको चुप रहना था।" इत्यादि। इसी उधेड़-बुन में वे पड़े थे कि बरात आ गई। पर थोड़ी ही देर में घोर कुहराम छा गया। वर का पता नहीं था। आधे रास्ते तक उसको सब ने देखा था; पर यहाँ पहुँचते ही वह न जाने कहाँ चला गया। रमेश को बड़ा दुःख हुआ। वे खोये हुए वर की खोज में बाहर चले गये। इसी समय एक बड़ा आदमी रायसाहब की खिदमत में उपस्थित हुआ और उनके हाथ में एक बन्द लिफाफा देकर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये चलता हुआ। रायसाहब ने लिफाफा खोला। उसमें लिखा था—

"माननीय रायसाहब,

आपकी पुत्री लाड़िली बड़ी ही सुयोग्य और आप की आज्ञा माननेवाली है। यदि आप उसका विवाह किसी जान-

वर के साथ करने पर उतारू हो जायँगे तो भी वह कुछ न कहेगी। लड़कियों की इसी प्रकार की सरलता ने कन्या-कुल को पीड़ित कर रक्खा है। इसी सीधेपन के कारण आठ वर्ष की लड़की अस्सी बरस के बूढ़े के साथ विवाह दी जाती है। गुड़ियों की सगाई करने के पहिले ही बालिका अपनी सगाई की बातचीत सुनने लगती है। माता-पिता अपने उत्तर-दायित्व का कुछ भी ध्यान नहीं करते। यह अधिकार का दुरुपयोग है। आप समझदार हैं। आप को क्या विदित नहीं है कि लाड़िली रमेश को चाहती है। जानकर भी उसके विवाह का अन्यत्र प्रबन्ध करना भारी भूल है। मैं रमेश का सच्चा मित्र हूँ। अतएव उनके रहते हुए लाड़िली के साथ विवाह करने में असमर्थ हूँ। आशा है, आप पुनः विचार करेंगे; और तीन तीन हृदयों का एक साथ बलिदान न करेंगे।

आपका—देवव्रत।"

रायसाहब ने उसी दम वह पत्र देवव्रत के पिता को दिखाया। देवव्रत के पिता मूर्ख न थे। उन्हें अपने पुत्र की बात ठीक जँची और वे लौट जाने का प्रबन्ध करने लगे। इसी समय देवव्रत को पकड़े हुए रमेश आ पहुँचे। दोनों को एक साथ देखकर सब दङ्ग रह गये। लोगों की भीड़ से एक आवाज़ आई—

"यह भारत की शीघ्र-उन्नति की सूचना है ।"

× × × ×

कहते हैं, फिर लाड़िली का विवाह नहीं हुआ। उसने प्रण कर लिया कि जब तक एक भी ऐसा पुत्र रहेगा जो माता-पिता की आज्ञा न माने और जब तक एक भी ऐसी पुत्री रहेगी जिसका विवाह माँ-बाप आँख मूँदकर कर दें, तब तक मैं अविवाहित रहकर इन कुरीतियों के दूर करने में तत्पर रहूँगी। देवव्रत ने वापस जाते ही माता से क्षमा-प्रार्थना की और उसके इच्छानुसार अन्यत्र अपना विवाह कर लिया। रमेश का उस दिन से कोई पता नहीं चला। सुना जाता है, वे तभी प्रगट होंगे जब भारत को स्वराज्य मिल जायगा और उसकी सारी सामाजिक कुरीतियाँ दूर हो जायँगी। क्या आश्चर्य जो वे किसी जेल की एकान्त कोठरी में बैठे गाते हों—

आवेंगे बौर रसालन में अरु कोकिल बागन में बिहरैंगे।
एक दिना न तु एक दिना हमरेहु गये दिन फेरि फिरैंगे॥

———

पिता-पुत्र

१

पण्डित कृपाशङ्कर शर्मा तर्क-शास्त्र में अद्वितीय थे। वाद-विवाद में उनसे कोई पार नहीं पा सकता था। चारों तरफ़ उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा हो रही थी। जहाँ वे जाते थे वहीं उनका धूम-धाम से स्वागत होता था और हज़ारों आदमी उनका व्याख्यान सुनने आते थे। फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं था। बात यह थी कि उनके घर में ही उनका एक प्रबल विरोधी उत्पन्न हो गया था। उनका ज्येष्ठ पुत्र राधाचरण सोलह वर्ष से ऊपर का हो चुका था और मौके-बेमौके ऐसे ऐसे प्रश्न कर बैठता था जिनका उत्तर देना कृपाशङ्कर के लिए कठिन हो जाता था।

२

पण्डित कृपाशङ्कर शर्मा में सब से बड़ी त्रुटि यह थी कि वे जैसा कहते थे वैसा करते नहीं थे। राधाचरण उनकी इसी दुर्बलता को पकड़ता था और उन्हें निरुत्तर कर देता था। पहले तो कृपाशङ्कर ने अपने बेटे को धमकाया और मारा-पीटा भी। परन्तु जब इससे कुछ लाभ न हुआ तब उससे बोलना बन्द कर दिया। इस दशा में भी पिता-पुत्र से कभी-कभी दो-दो चोंचें हो ही जाया करती थीं।

एक दिन कृपाशङ्कर अपने मकान की छत पर बैठे छोटे पुत्र के विवाह के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। राधाचरण ने आकर कहा—"पिता जी, यदि बुरा न मानें तो कुछ मैं भी निवेदन कर दूँ।"

"नहीं, मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनना चाहता," कहकर कृपाशंकर ज़रा गम्भीर हो गये।

"परन्तु माँ तो अवश्य सुनना चाहेंगी, क्यों माँ ?" यह कहता हुआ राधाचरण अपनी माँ के पास जाकर खड़ा हो गया।

माता ने बेटे को प्यार से बैठाकर कहा—"कह, क्या कहता है।" राधाचरण ने कहना प्रारम्भ किया—"माँ, मुझे एक बात का बड़ा दुःख है।"

"क्या ?"

"यही कि मैं मूर्ख पिता का पुत्र क्यों नहीं हुआ।"

मां ने बेटे की ओर कुछ आश्चर्य से देखकर कहा—"ऐं, यह क्या बकता है।"

राधाचरण उत्तेजित स्वर में बोला—"ठीक कहता हूँ मां! पिता दुनियां को उपदेश देते फिरते हैं कि बाल-विवाह न करो, दहेज मत लो, हिन्दू मात्र को अछूत मत समझो, ब्याह आदि में वेश्याओं का नाच बन्द करो। परन्तु स्वयं ये सब कार्य करते जाते हैं। यह सब देखकर मुझे तो बड़ी लज्जा

लगती है। यदि मूर्ख पिता का पुत्र होता तो दुःख न होता। क्योंकि तब यह कहने को तो होता कि पिताजी कुछ जानते नहीं हैं। अब मैं अपनी लज्जा कैसे दूर करूँ। अपने मन को क्या कहकर सान्त्वना दूँ।"

राधाचरण की माँ ने अपने पति की ओर देखा। उनका विश्वास था कि सच को झूठ और झूठ को सच प्रमाणित करनेवाले पति कुछ ऐसी बातें कहेंगे जिससे पुत्र को सन्तोष हो जायगा। परन्तु कृपाशङ्कर का आसन खाली था। वे पुत्र की बात आरम्भ होने से पहले ही उठकर बाहर चले गये थे।

३

आज कृपाशङ्कर के द्वितीय पुत्र के विवाह का दिन था। कृपाशङ्कर ने खूब कसकर दहेज लिया था। विवाह में वेश्या-नृत्य का भी प्रबन्ध था। राधाचरण इस उत्सव में भाग नहीं लेना चाहता था। परन्तु माँ ने उसे बहुत दबाव डालकर भेजा था। जनवासे में वह अपने दो-चार मित्रों के साथ अलग बैठा था। शेष लोग वेश्या-नृत्य देखने में तल्लीन थे। जहाँ राधाचरण बैठा था, वहीं डफली बजानेवाले मेहतर भी बैठे थे। बड़े ध्यान से वेश्या का एक गीत सुनने के पश्चात् एक मेहतर ने कहा—"इसे गाना-वाना कुछ नहीं आता, इससे अच्छा तो मैं गा सकता हूँ।"

राधाचरण ने पूछा—"सचमुच रे ?"

"हाँ।"

"गा तो सही।"

मेहतर ने अपनी बंशी उठाई और उच्च-स्वर में बजाना प्रारम्भ किया। सचमुच वेश्या का गान फीका पड़ गया। पचासों लोग महफिल से उठकर राधाचरण के पास आ खड़े हुए और वाह-वाह करने लगे। एक ने कहा—"इस चुड़ैल से ठीक से बोलते भी नहीं बनता और सब उस पर मरे जाते हैं। यह मेहतर इतनी मस्तानी बंशी बजाता है, फिर भी कोई इसका आदर नहीं करता।"

राधाचरण बहुत देर तक स्थिर न रह सका। उसने अपने स्थान से उठकर मेहतर को हृदय से लगा लिया और अपने गले की सोने की जञ्जीर उसके गले में डालकर कहा—"यह तेरा पुरस्कार है। अज्ञानावस्था में गुणी का अनादर करना क्षम्य है; परन्तु गुणों का परिचय पा जाने पर गुणी को ठुकराना महा पाप है। तू उस वेश्या से लाखगुना अधिक आदर के योग्य है। आ, मेरे साथ मेरी खाट पर बैठ।"

मेहतर ने बहुत हठ किया; परन्तु राधाचरण ने न माना। उसे खींचकर उसने अपनी खाट पर बैठा ही लिया। दूसरे ही क्षण यह समाचार चारों ओर फैल गया। नाच-गान बन्द हो गया। पण्डित कृपाशङ्कर को क्रोधित हुए अब तक

किसी ने नहीं देखा था; परन्तु आज उनका क्रोध देखकर सब दङ्ग रह गये। बाघ के समान वे उस बेचारे मेहतर पर टूट पड़े और उसे डण्डे मार-मारकर भगा दिया। उसके बाद उन्होंने राधाचरण पर भी दो-चार डण्डे जमाये और उसे भी वहाँ से चले जाने को कहा।

× × ×

लगभग आधी रात बीते कृपाशङ्कर का क्रोध कुछ शान्त हुआ। तब उन्होंने पता लगवाया कि राधाचरण कहाँ है; और उसकी क्या अवस्था है। न जाने क्यों उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। वे अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े करवटें लेने लगे। अनेक यत्न करने पर भी उन्हें नींद न आई। अन्त में वे उठे और टहलने लगे। टहलते-टहलते बहुत दूर निकल गये। एकाएक उनके कान में बंशी की ध्वनि सुनाई पड़ी। चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश में उन्होंने देखा कि एक खुले खेत में वही मेहतर अपनी बंशी बजा रहा है; और उनका पुत्र प्रेम से बैठा सुन रहा है। दोनों मस्त हैं—दोनों के चेहरों पर न तो किसी प्रकार की उदासी है और न अपमान और शोक की छाया। बड़ी देर तक खड़े वे यह दृश्य देखते रहे। लौटते समय उनका हृदय रह-रहकर कह रहा था—"कृपा-शङ्कर, तुम्हारे उपदेशों ने तुम्हारी स्त्री के हृदय में पैठकर तुम्हारे इस पुत्र की रचना की है। इसलिए इस के कार्य्यों के

कारण तुम्हीं हो; और अब उसका सुधार करना तुम्हारे वश के बाहर है। अतः वह जो करता है, वही उसे करने दो।"

सन्तान-निग्रह।

१

देहली के संगम थियेटर से लौटते समय गोविन्द ने कहा—" I shall be the last man of my line " "मैं अपने वंश की 'इति' होऊँगा।"

साथ में आठ-दस नवयुवक और थे। उनमें से एक बोल उठा—"और पितृ-ऋण! तुम्हारा पितृ-ऋण कौन अदा करेगा ?"

"तुम" कहकर गोविन्द ने मुस्करा दिया। इसके पश्चात् सब लोग चुप हो गये। ये सब इम्पीरियल सेक्रेटरियट के क्लर्क थे।

मार्च १९१५ के प्रथम सप्ताह का अन्तिम दिन (शनिवार) था। इतवार को आफिस बन्द रहेगा। इसलिए आज सब मनबहलाव के लिए संगम-थियेटर में सिनेमा देखने आये थे। सिनेमा का उद्देश्य लोगों को संतान-उत्पत्ति को नियमित करने का उपदेश देना था। देश की ग़रीबी के जहाँ अनेक कारण

हैं वहीं एक जन-संख्या की असाधारण वृद्धि भी है। प्रकृति ने जितने मनुष्यों के लिए खाद्य पदार्थ उत्पन्न किया है उतने ही मनुष्य आराम से रह सकते हैं। उससे अधिक मनुष्यों का होना और खाद्य पदार्थ में वृद्धि न होना अराजकता के लक्षण हैं। जर्मनी को इसीलिए युद्ध की आवश्यकता पड़ी थी। हमारे देश के लोगों को इसीलिए कुली बनकर फीजी, मोरीशस आदि जाना पड़ता है। गोविन्द ने यह बात भली भाँति समझ ली थी। इसीलिए उन्होंने उक्त शब्द कहे थे। जिसने उनको उत्तर दिया था उसका नाम नारायण था। उसकी आयु सत्ताइस साल की थी और उसके तीन लड़कियां थीं। चांदनी-चौक में विक्टोरिया की काली मूर्ति के पास पहुँचकर नारायण ने कहा—"संतान उसको न उत्पन्न करना चाहिये जो ग़रीब है—जिसके पास पालन-पोषण के लिए रुपया नहीं है—तुम तो डेढ़ सौ रुपये मासिक पाते हो।"

गोविन्द ने कहा—"आजकल के ज़माने में डेढ़ सौ कौन सी बड़ी बात है ? हमारे सेक्रेटरी साहब तो डेढ़ हज़ार मासिक पाते हैं, अभी उनका विवाह तक नहीं हुआ।"

"वे अँग्रेज़ हैं"—नारायण ने कहा।

"मैं भी किसी अँग्रेज़ से कम नहीं हूँ।"

गोविन्द की इस बात पर सब लोग हँस पड़े।

२

मार्च १९१५ को आज पूरे पाँच साल व्यतीत हो गये। इस बीच में नारायण के दो लड़कियां और पैदा हुईं और गोविन्द की पत्नी को पास-पड़ोस की महिलाओं ने बन्ध्या करार दिया। नारायण ने गोविन्द से कहा—

"गजब हो गया"।

"कैसा ?"

"रिडक्शन" (Reduction)

"इसकी खबर बहुत दिनों से थी।"

"जी नहीं, सर पर आ गया। एक-एक महीने की नोटिस मिल गई।"

"किसको-किसको ?"

"मोहिनीचन्द्र चट्टोपाध्याय को, कैलाश को, बशीरुद्दीन को और मुझे।"

"और मुझे ?"

"आपका नाम तो मैंने लिस्ट में नहीं देखा।"

"ईश्वर को धन्यवाद है।" कहते हुए गोविन्द ने एक दीर्घ-निश्वास लिया। इस बीच में नारायण की सबसे बड़ी लड़की आ गई। अब वह विवाह योग्य हो चुकी है। उसे देखकर गोविन्द ने कहा—"आओ बेटा कुसुम, अब कौन क्लास में पढ़ती हो ?"

कुसुम ने अनमनी होकर कहा—"किसी में नहीं।"

"किसी में नहीं! कल तो मैंने तुम्हें स्कूल जाते देखा था।"

"देखा होगा; पर आज तो नहीं जाती।"

"क्यों, आज क्या हुआ ?"

"पिताजी कहते हैं—पढ़ना बन्द करो। अब फजूल है।"

गोविन्द ने नारायण से कहा—क्योंजी! कुसुम क्या कहती है ?"

"ठीक ही तो कहती है।"

"पढ़ना फजूल है ?"

"फजूल ही है"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं नहीं पढ़ा सकता।"

सब से छोटी बहिन के रोने की आवाज़ सुनकर कुसुम फिर वापस चली गई। गोविन्द ने कहा—"पढ़ा क्यों नहीं सकते ? पैदा क्यों किया था ?"

"एक-दो होतीं तो पढ़ाता भी। पांच हैं। अब पाँच को कैसे पढ़ाऊँ ? खर्च कहां से लाऊँ ?"

"एक ही दो पैदा करते, पाँच क्यों पैदा कर लिया ?"

"मुझे क्या खबर थी कि बीच में नौकरी छूट जायगी!"

"अभी तो नौकरी ही छूटी है, शायद तुम मर जाते तब।"

इस बार नारायण ने कोई उत्तर नहीं दिया।

३

गोविन्द और नारायण दोनों में बड़ी घनिष्ट मित्रता थी। दोनों एक ही घर में रहते थे और एक ही साथ आफिस जाते थे। अन्तर केवल इतना ही था कि नारायण के पांच लड़कियां और गोविन्द सन्तानहीन थे। इसका कारण पाठक ऊपर पढ़ ही चुके हैं।

नारायण की स्त्री ने गोविन्द की पत्नी से कहा—"बहिन, तुम्हीं अच्छी हो।"

"क्यों?"

"क्योंकि तुमको बाल-बच्चों की फिक्र नहीं है।"

"है क्यों नहीं! क्या तुम्हारे बच्चे हमारे बच्चे नहीं हैं। तुम्हारे बच्चों को मैं जितना प्यार करती हूँ उतना शायद अपने बच्चों को न करती।" इसी समय बाहर से किसी के जञ्जीर बजाने की आवाज़ हुई और बन्द किवाड़ की सांस से एक लिफ़ाफ़ा घर में गिर पड़ा। कुसुम ने दौड़कर उसे उठा लिया। नारायण मन मारे चार्ज देने की तिथि गिन रहे थे। उन्होंने लिफाफा फाड़ते ही कहा—"खैर नहीं। बड़े साहब ने बुलाया है। सब की आंखों में जल भर आया।

४

साहब के बँगले पर नारायण ने देखा, गोविन्द वहां पहिले

ही से बैठे हैं। साहब ने कहा—"नारायण, तुम्हारे लिए गोविन्द अपनी नौकरी छोड़ रहे हैं, अब तुम हमारे आफ़िस से अलग नहीं किये जाओगे।"

"नहीं हुज़ूर, हमारे दुर्भाग्य का फल गोविन्द को क्यों चखना पड़े?"

गोविन्द ने कड़ककर कहा—"क्योंकि वह तुम्हारा दोस्त है। और उसके कोई सन्तान नहीं है।"

परन्तु नारायण इसे स्वीकार न कर सकता था। इस पर गोविन्द ने कहा—"प्यारे नारायण! मैंने जो संयम की शरण ली और सन्तान-उत्पत्ति नहीं की, उसका उद्देश्य यही था कि मैं अपने देश, जाति, मित्र आदि की सेवा कर सकूं। आज मुझे उसी प्रकार की सेवा का अवसर मिला है। मुझे पूर्ण आशा है, तुम मुझे इस मार्ग से विचलित न करोगे।"

नारायण इस बात को जानते थे कि गोविन्द बड़ा हठी है। उन्हें मार्च १९१५ के सिनेमे की बात याद आ गई। उनके नेत्र बन्द हो गये; और उन्होंने देखा, अन्धकार में कुछ सुनहले शब्द चमक रहे हैं। उन्होंने साफ़ साफ़ पढ़ा—

"Life is such a hell, that nobody should take the Liberty of inflicting it upon his children"

"जीवन नरक है। किसी मनुष्य को अपनी सन्तान पर इस नरक का भार न रखना चाहिये।"

उस समय साहब और गोविन्द दोनों ने एक दूसरे को आंसुओं से तर देखा। किसे मालूम था कि पाँच वर्ष में यह परिवर्तन हो जायगा।

प्रतीक्षा

१

सेठ माधवशरण अपने कमरे के स्वच्छ बिछौने से प्रायः सड़क की ओर देखा करते थे। उस सड़क से निकलने-वालों की संख्या बहुत परिमित थी। कदाचित् यही कारण था कि उनमें से प्रत्येक को सेठजी पहिचान गये थे। कौन किस समय निकलता है, कौन कैसे चलता है, आदि बातों का उन्हें भली-भाँति ज्ञान हो गया था। सेठजी जितने धनी थे उतने ही धार्मिक और उदार भी थे। परन्तु जैसे अन्य आदमियों में कुछ न कुछ व्यसन होते हैं वैसे ही सेठ माधव-शरण में भी एक व्यसन था। वे अपने दरवाजे के सामने से निकलनेवाले व्यक्तियों को बिना देखे नहीं रह सकते थे। धीरे-धीरे यह व्यसन यहाँ तक बढ़ा कि उनकी दृष्टि सदैव सड़क की ओर लगी रहने लगी। सेठजी की यह आदत किसी को पसन्द नहीं थी; परन्तु यह कोई ऐसी बुरी लत नहीं थी, जिससे उन्हें कोई कुछ कहता।

धीरे-धीरे सेठजी की एक मात्र पुत्री ललिता भी इस कार्य में उनका हाथ बटाने लगी। ललिता की अवस्था पन्द्रह वर्ष से ऊपर हो चुकी थी। परन्तु एक तो सेठजी अपनी पुत्री को अत्यन्त प्यार करते थे, दूसरे उन्हें स्त्रियों का पर्दे में रखना पसन्द नहीं था। इसलिए उन्हें ललिता का सड़क की ओर देखना बुरा नहीं लगता था। दूकान में ललिता के आ जाने से उस मार्ग से निकलनेवालों की भी यह आदत हो गयी थी कि वे बिना सेठजी को देखे नहीं रहते थे। इस प्रकार सेठजी की भाँति उनकी पुत्री ललिता भी उस मार्ग से निकलने-वालों में से प्रत्येक को पहिचान गयी थी।

जिस दिन ललिता ने अपने सत्रहवें वर्ष में प्रवेश किया उसी दिन उस सड़क से एक ऐसा युवक निकला जो न निक-लता तो शायद यह कहानी न लिखी जाती। उस युवक में कोई विशेष बात नहीं थी, जैसा उसका रूप-रङ्ग साधारण था, वैसी ही उसकी पोशाक भी साधारण थी। फिर भी उसने सेठ माधवशरण और उनकी पुत्री को आकर्षित कर लिया। उस युवक में क्या बात थी जो उसने इन पिता-पुत्री को आक-र्षित कर लिया, यह हम नहीं बता सकते, हम जानते भी नहीं। हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि वह युवक जब सेठजी की दूकान के सामने आता था तब बड़ी सावधानी से चलता था, उसका सिर नीचा हो जाता था और वह अपने जूतों को

देखता हुआ चुपचाप निकल जाता था। ललिता की निगाहों के सामने से उसका निकल जाना ऐसा ही होता था जैसे किसी चतुर शिकारी के तीरों से बाल-बाल बचकर कोई मृग निकल जाय। ललिता बड़ी सुन्दर थी, और उसे अपने सौन्दर्य का ज्ञान था। उस मार्ग से निकलनेवाले सभी लोग उस पर मुग्ध थे, इस बात को भी वह समझती थी। परन्तु उसकी समझ में न आता था कि यह साधारण युवक उसकी उपेक्षा क्यों कर रहा है। सेठ माधवशरण के जीवन में भी यह प्रथम ही अनुभव था।

हम अपने पाठकों से यह बात नहीं छिपाना चाहते कि जिस प्रकार युवक ने ललिता को आकर्षित कर लिया था, उसी प्रकार वह भी उसकी ओर आकर्षित हो गया। परन्तु उसका स्वभाव इतना सङ्कोची था कि वह ललिता की ओर देखने का साहस नहीं करता था। प्रतिदिन वह चलते समय सोचता था कि आज उस दूकान की ओर अवश्य देखूँगा; परन्तु दूकान के निकट पहुँचते-पहुँचते उसका सारा साहस भङ्ग हो जाता था और वह एक भेड़ की तरह चुपचाप अपने सलज्ज विचारों के बीच से निकल जाता था। उसे ऐसा प्रतीत होने लगता था मानो उसने कोई भयङ्कर अपराध कर डाला हो।

प्रयत्न करने से क्या नहीं हो जाता? एक दिन उस युवक ने ललिता की ओर देख ही तो लिया। यह कार्य करने

के लिए उसे कितना साहस सञ्चित करना पड़ा था, यह बतलाने में हम व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहते। पाठक इस परिस्थिति का स्वयं अनुभव कर लें; और हमारी इस कथा के साथ आगे चलें।

अब तक ललिता की यह अवस्था थी कि उसकी ओर कोई कितना ही देखता वह ज़रा भी न झेंपती थी। पुरुषों के दृष्टि-बाणों से बचने के लिए स्त्रियाँ या तो घूँघट काढ़ लेती हैं, या आड़ में हो जाती हैं, अथवा मुँह फेर लेती हैं। परन्तु ललिता ने यह सब नहीं सीखा था। अब उसे बिना सिखाये यह सारी विद्या मालूम हो गई। उसकी आँखें नीची हो गयीं और उसने अपना मुँह फेर लिया। सेठजी ने अपनी पुत्री में यह परिवर्तन देखकर वही सोचा जो इस कहानी के पढ़नेवाले हमारे प्रत्येक पाठक सोच सकते हैं।

२

सेठजी का यह नियम था कि वे उस सड़क से निकलनेवाले व्यक्तियों को देखा तो करते थे; परन्तु बोलते किसी से नहीं थे। अब वे इन नियम को संयत न रख सके! एक दिन जब वही युवक उनके सामने से निकला, तब उनके संयम का बाँध टूट गया और वे उसे पुकारकर कहने लगे—"महाशय, तनिक इधर आने की कृपा कीजिये, आप से कुछ बातें करनी हैं।"

युवक दूकान के सामने जाकर खड़ा हो गया।"

सेठजी ने कहा—"भीतर आ जाइये, आराम से बैठिये।" फिर वे ललिता की ओर देखकर बोले—"बेटी, पान तो ले आ।"

युवक शरमाते-शरमाते सेठजी के सामने बैठ गया। सेठजी कहने लगे—"आपको देखता तो हमेशा हूँ; परन्तु आपसे बातें करने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ है!"

युवक की समझ में न आया कि इस बात का वह क्या उत्तर दे। उसने कुछ कहने की चेष्टा की, उसके होंठ भी हिले; परन्तु वह कोई शब्द न बना सका।

सेठजी फिर बोले—"आप तो शायद यहाँ के रहनेवाले नहीं हैं।"

यह एक ऐसा प्रश्न था, जिसके उत्तर में बहुत सी बातें कही जा सकती थीं। परीक्षक के सामने उपस्थित हुए विद्यार्थी के समान वह युवक एक विचित्र प्रकार की बोली में कहने लगा—"जी नहीं, मैं युक्तप्रान्त का रहनेवाला हूँ। इन्दौर में मुझ को कोई नहीं जानता। यहाँ मैं जैन-हाई-स्कूल में शिक्षक होकर आया हूँ।"

सेठजी—"आपका नाम?"

युवक—"श्यामसुन्दर।"

सेठजी—"हाँ, मैंने अपने भतीजे से आपकी बड़ी बड़ाई सुनी है। मैं चाहता हूँ कि आप......"

इसी समय ललिता वहाँ पान लेकर आ पहुँची और काँपते हुए हाथों से उसने श्यामसुन्दर को नमस्कार किया। इसके पश्चात् वह पिता के पास पान रखकर फिर भीतर चली गयी।

सेठजी—"हाँ, क्या कह रहा था—अच्छा! हाँ, मैं चाहता हूँ कि आप मेरी पुत्री को किसी समय एक घण्टे पढ़ा दिया करें। बदले में मुझ से आपकी जो सेवा बन पड़ेगी, करूँगा।"

इस अवसर पर श्यामसुन्दर ने बहुत सी बातें बहुत तरह से कहीं। उसी तरह उन बातों का सेठ ने जवाब भी दिया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि श्यामसुन्दर ललिता को प्रति दिन सायङ्काल में आकर पढ़ा जाया करे।

३

दूसरे दिन से श्यामसुन्दर नियमित समय पर ललिता को पढ़ाने आने लगा। ललिता के पढ़ने का कमरा दूकान के बग़ल में था। छोटी सी मेज थी। मेज के दोनों ओर एक एक कुर्सी पड़ी थी। बग़ल में छोटी सी खुली आलमारी खड़ी थी। सेठजी ने इस बात की घोषणा कर रक्खी थी कि जब श्यामसुन्दर ललिता को पढ़ाने आवे, तब उस कमरे की ओर कोई न जाय। इस घोषणा में उनका चाहे जो उद्देश्य रहा

हो; परन्तु वे कहते यही थे कि इससे बेटी के पढ़ने में हर्ज होगा ।

नवयुवती के साथ इस प्रकार एकान्त में बैठने का श्यामसुन्दर को कभी अवसर नहीं मिला था । पहले दिन तो वह ललिता से कुछ बोला ही नहीं । ललिता भी कुछ नहीं बोली । घड़ी ने ज्यों ही घण्टा समाप्त होने की सूचना दी त्यों ही वह उठ खड़ा हुआ और बोला—"अब जाता हूँ ।" इसके बाद वह चला गया और ललिता उसी स्थान पर बैठी न जाने क्या क्या सोचती रही । दूसरे दिन श्यामसुन्दर ने ज़रा साहस करके पूछा—"आप मुझसे क्या पढ़ना चाहती हैं ?" ललिता ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—"आप जो पढ़ायें ।" दूसरे दिन इससे अधिक और कोई बात नहीं हुई । उस दिन श्यामसुन्दर घर जाने पर यही सोचता रहा कि वह ललिता को किस प्रकार पढ़ाना आरम्भ करे, अपनी शर्म को कैसे दूर करे । ललिता के साथ उसका जो सम्बन्ध है वह ऐसा नहीं है कि उससे किसी प्रकार की लज्जा की जाय । अन्त में उसने सोचा कि तीसरे दिन जाकर इमला बोलना ठीक होगा । तीसरे दिन ललिता के कमरे में पहुँचते ही श्यामसुन्दर ने कहा—"आज कुछ इमला लिखाऊँगा, लिखो—" यह वाक्य वह कई घण्टे के अभ्यास के पश्चात् कह पाया था । फिर भी उसे प्रसन्नता थी । क्योंकि वह अपने प्रयत्न में सफल था । इस प्रकार पन्द्रह-बीस दिन

के पश्चात् दोनों की लज्जा इतनी दूर हो सकी थी कि वे मामूली तौर से बातें कर सकते थे ।

धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे की ओर देखने का समय ढूँढ़ने लगे । जब ललिता लिखती या पढ़ती तो श्यामसुन्दर उसके नव-विकसित गुलाब के समान सुन्दर मुख की ओर देखता और जब श्यामसुन्दर का ध्यान दूसरी तरफ होता, तब ललिता उसकी तरफ देखती । कभी कभी ऐसा भी होता कि दोनों की आँखें मिल जातीं । तब दोनों लज्जा से लाल हो उठते, जल्दी से अपने मुख फेर लेते और मन ही मन अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप करते । दो-तीन महीने समाप्त हो जाने पर दोनों ने कुछ और उन्नति की । अब वे समय पाकर एक दूसरे के मुख की ओर देखते और आँखों के मिलते ही मुसकरा देते । इस प्रकार दिन कटने लगे । श्यामसुन्दर को यह समय बड़ा सुखमय प्रतीत हुआ । एक घण्टे के बदले वह चार-चार घण्टे ललिता के कमरे में बैठा रहता और कुछ पता न चलता कि समय कब बीत गया । वह मित्रों से मिलना-जुलना, वाचनालय में जाना, खेलने जाना, खाना-पीना आदि सब कुछ भूल सा गया । ललिता को पाकर वह संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु पा गया था । अब उसके हृदय में और कोई महत्वाकांक्षा शेष नहीं रह गयी थी । बिलकुल यही अवस्था ललिता की भी थी ।

अब प्रश्न यह उठता है कि सेठ माधवशरण ने अपनी पुत्री के साथ एक अपरिचित युवक को इतनी स्वतन्त्रता क्यों दी। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि सेठजी एक अत्यन्त उदार पुरुष हैं। विशेषकर स्त्रियों की स्वतन्त्रता के तो वे बड़े ही पक्षपाती हैं। जब ललिता का जन्म हुआ था तभी उन्होंने इस बात की प्रतिज्ञा कर ली थी कि वे अपनी पुत्री को न तो पर्दे में रक्खेंगे और न उसका बिना उसकी सम्मति लिये विवाह करेंगे। बहुत न लिखकर यहाँ इतना ही लिख देना यथेष्ट होगा कि सेठजी ने श्यामसुन्दर को ललिता के योग्य पति समझ लिया था और वे चाहते थे कि ललिता श्यामसुन्दर को प्यार करने तथा उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट कर दे। इस प्रकार पाठक यह समझ सकते हैं कि ललिता अपने प्रेमाभिनय की जो उन्नति कर रही थी वह उसके पिता को कितनी पसन्द थी।

एक दिन श्यामसुन्दर और ललिता मेज़ के चारों तरफ़ बच्चों का सा खेल खेलने लगे। दो में से एक मेज़ के चारों ओर भाग रहा था और दूसरा उसे पकड़ने का प्रयत्न कर रहा था। ऐसे ही समय में सेठजी ने उस कमरे में प्रवेश किया। सेठजी को देखते ही दोनों लज्जा और भय से त्रस्त होकर जहाँ के तहाँ खड़े रह गये। सेठजी ने कहना प्रारम्भ किया- "डरने की कोई बात नहीं। मैं तुम दोनों से बहुत प्रसन्न हूँ;

और चाहता हूँ; कि तुम दोनों इसी प्रकार सदैव मेरी आँखों के सामने खेलते-कूदते रहो। मेरे मन में बहुत दिनों से एक बात उठ रही है। तुम दोनों आज्ञा दो तो आज उसे प्रकट कर दूँ।"

कमरे का सन्नाटा और भी गम्भीर हो गया। थोड़ी देर के बाद वे फिर बोले—"क्या स्पष्ट ही कहना होगा ?"

फिर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सेठजी ने कहा—"श्यामसुन्दर! ललिता! तुम दोनों एक ही घर के मालिक मालिकिन बना दिये जाओ तो कैसा ?"

अब ललिता अपना सिर नीचा किये अपने पैर के अँगूठे पर कुर्सी का एक पावा रख रही थी और श्यामसुन्दर घबड़ाई हुई सूरत में खिड़की से दूर न जाने क्या देखने की चेष्टा कर रहा था।

सेठजी ने आज्ञा देने के स्वर में कहा—"दोनो मेज़ के पास आओ और अपने अपने मन की बात कागज़ पर लिखकर मुझे दो।"

थोड़ी देर पश्चात् सेठजी के हाथ में दो कागज़ आ गये।

ललिता ने लिखा था—"मुझे पिता की आज्ञा शिरोधार्य है।" श्यामसुन्दर ने लिखा था—"मेरा हृदय ललिता को समर्पित है; परन्तु मेरे शरीर पर मेरा अधिकार नहीं, मैं विवाहित हूँ।"

श्यामसुन्दर के उत्तर से सेठजी की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। उनके हृदय में श्यामसुन्दर के लिए जितना स्नेह था वह एकाएक घृणा के रूप में परिणत हो गया। सिंहासन से च्युत और शत्रु पर कुपित; पर असमर्थ, भूप के समान वे अपनी दूकान में वापस चले आये और अपनी गद्दी पर बैठकर उदास भाव से सड़क की ओर देखने लगे। उस दिन उस सड़क से जितने मनुष्य निकले, सब उन्हें अपरिचित से प्रतीत हुए!

४

सेठ माधवशरण के यहाँ से वापस आने पर श्यामसुन्दर को रात भर नींद नहीं आयी। वह बिछौने पर पड़ा-पड़ा न जाने क्या-क्या सोचता रहा। उसे ऐसा प्रतीत होता था मानो उसने कोई क़त्ल कर डाला हो और पुलिस उसके पीछे लगी हो। ज़रा सा भी खटका होने पर वह चौंक उठता था। किसी तरह रात बीती और सबेरा हुआ। बिछौने से उठते ही वह माधवशरण के मकान की ओर देखने लगा कि कोई आ तो नहीं रहा है। अचानक उसकी दृष्टि एक स्त्री पर पड़ी जो ललिता की नौकरानी थी। पहले जब वह इस स्त्री को देखता था तो दूर ही से पुकारकर कुछ न कुछ पूछता था; पर आज उसकी ज़बान न खुली। उसे ऐसा जान पड़ा मानो जो स्त्री उसकी कृपा की भूखी रहती थी वही उसके भाग्य का फैसला

लिये आ रही है। उसका यह अनुमान बिलकुल ठीक था। स्त्री ने उसके हाथ में ललिता के हाथ का लिखा एक लिफ़ाफ़ा लाकर रख दिया। श्यामसुन्दर ने बड़ी शीघ्रता के साथ लिफ़ाफ़े को खोलकर पढ़ना प्रारम्भ किया—

"प्रिय श्याम,

पिताजी की आज्ञा है कि अब मैं आप से न पढ़ूँ। आप से मिलूँ भी नहीं, आप से बोलूँ भी नहीं, आपको भूल जाऊँ। पहली तीन बातें तो आसान हैं; पर चौथी बात मेरे वश की नहीं है और मैं यदि आप को न भूल सकूँ तो मेरा इसमें कोई अपराध भी नहीं है। मैं समझती हूँ, मेरे ही समान आप भी व्यथित और चिन्तित होंगे। इस लिए इस अवसर पर विशेष लिखकर आप को कष्ट न दूँगी। सदा के लिए नमस्कार।

आपकी—ललिता"

पत्रोत्तर में श्यामसुन्दर ने केवल इतना ही लिखा—

"ललिते,

मेरा अपराध अक्षम्य है। विवाहित को नया प्रेम करने का अधिकार नहीं है। यदि मैं वास्तविक स्थिति प्रकट न कर देता तो अभी बहुत समय तक तुम्हारी सेवा में रह सकता था। पर मैं तुम्हारे पिता को और तुम को धोखा देने का साहस नहीं कर सकता था। मैं सदा के लिए तुम्हारा नमस्कार स्वीकार करता हूँ। यदि दैव-इच्छा से मैं अपनी पत्नी

के पश्चात् जीवित रह गया तो फिर तुम्हारे दर्शन करूँगा और तब यदि कोई लिखायेगा तो तुरन्त लिख दूँगा कि मेरा तन-मन सब ललिता पर निछावर है।"

जब नौकरानी पत्रोत्तर लेकर वापस चली गयी तब श्यामसुन्दर अपने कमरे में आ बैठा। बड़ी देर तक वह बैठा रहा। बैठे-बैठे बहुत सी बातें सोचता रहा। जब स्कूल जाने का समय हुआ तब वह उठा और बिना किसी पश्चात्ताप के एक ओर चला गया। उस दिन के पश्चात् फिर वह किसी को कभी उस शहर में दिखायी नहीं पड़ा।

ललिता फिर अपने पिता के साथ दूकान में बैठकर सामने से निकलनेवालों को देखने लगी। इसके अतिरिक्त पिता-पुत्री के पास और कोई काम भी नहीं था। धीरे-धीरे समय बीतने लगा। एक, दो, तीन, चार, इस प्रकार अनेक वर्ष व्यतीत हो गये तब भी ललिता का हृदय ज्यों का त्यों बना रहा। इसी अवस्था में अभी मालूम नहीं कितना समय और काटना होगा!

५

ललिता के समान श्यामसुन्दर स्वतन्त्र नहीं था और न उसकी आर्थिक स्थिति ही ऐसी थी कि वह एक स्थान पर बैठ जाता और रात-दिन केवल प्रेम और विरह की बातें सोचा करता। दो-तीन वर्ष इधर-उधर भटकने के पश्चात् उसने एक दूसरे शहर में स्कूल-मास्टरी कर ली; और अपनी पत्नी के

साथ वहीं रहने लगा। उसके रोम-रोम में ललिता का स्नेह भरा था; पर तो भी अपनी पत्नी पर वह यह प्रेम प्रकट नहीं होने देता था। अपनी मनोव्यथा को वह विधवा की वासना के समान दबाये रहता था और यद्यपि वह अपनी पत्नी को प्यार नहीं कर सकता था, तथापि वह उसके प्रति अपने कर्तव्य को समझता था और उस कर्तव्य-पालन के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहता था।

इस प्रकार उसने अपने जीवन के तीस वर्ष व्यतीत कर दिये। इस समय में उसके कई एक लड़के और लड़कियाँ हुईं। सब से बड़ा लड़का पच्चीस वर्ष का है और उसी शहर में प्रोफेसर हो गया है। उसकी पत्नी भी अपने पुत्रों और पुत्रियों में अब इस तरह लगी रहती है कि उसे श्यामसुन्दर की चिन्ता नहीं रहती। इस प्रकार पैंतीस वर्ष नौकरी कर चुकने के पश्चात् श्यामसुन्दरने पेन्शन ली और तीर्थयात्रा के लिए निकला। उसकी स्त्री अपने बच्चों के प्रेम में इतनी निमग्न थी कि उसने पति के साथ यह पुण्य लूटने से अस्वीकार कर दिया। श्यामसुन्दर अकेला घर से चला।

रेल पर सवार होते ही उसे उस समय की बात याद आयी, जब वह अपने यौवन के प्रभातकाल में नौकरी की तलाश में निकला था। इस के पश्चात् उसे ललिता और उसके पिता का स्मरण आया। अब वह एक प्रकार से स्वतन्त्र, अकेला और निश्चिन्त था—चाहे जो सोच सकता था। अपने इस सारे जीवन में वह ललिता को भूला नहीं था। परन्तु अब

अकेले होने पर वह उसके लिए व्याकुल हो उठा। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो ललिता का द्वार ही सब से बड़ा तीर्थ और ललिता ही सब से बड़ी देवी है। उसकी यात्रा का लक्ष्य अनायास उसी ओर होगया।

जब वह इन्दौर शहर में पहुँचा, तब शाम हो गई थी। फिर भी वह अपनी परिचित गलियों और सड़कों पर अनायास घूम आया। पाँच-छः घण्टे वह बराबर घूमता रहा; पर पराजय का अनुभव तक उसे नहीं हुआ। हो कैसे? अब वह एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया था, जहाँ उसके यौवन का सर्वोत्तम समय व्यतीत हुआ था और उसी समय की स्मृति से वह युवा हो उठा था। एक बार वह ललिता के मकान के सामनेवाली सड़क से भी निकला। उसने उस कमरे को पहचाना, जिसमें से सेठ माधवशरण ने उसे प्रथम बार बुलाया था। उसने उस खिड़की को भी देखा, जिसमें से उसने अन्तिम बार बाहर की ओर दृष्टि फेंकी थी। मकान वही था; पर रौनक वह नहीं थी। दूकान में एक छोटा, मन्दप्रकाश का, दीपक टिमटिमा रहा था। उसके सहारे एक वृद्धा स्त्री के समान कोई बैठा था। श्यामसुन्दर ने सोचा, शायद यही ललिता है, एक छोटा सा युग बीत जाने पर भी आशा का दीप जलाये बैठी उसकी बाट जोह रही है। बड़ी देर तक दूकान के सामने खड़ा होकर वह यह दृश्य देखता रहा, फिर वहाँ से आगे बढ़

गया। इस प्रकार वह प्रति दिन रात को उसी गली से निकलता और मिट्टी के दीपक के धुँधले प्रकाश में बैठी ललिता को देखता। जितना ही वह उसे देखता उतना ही उससे बातें करने के लिए व्याकुल हो उठता। इस प्रकार कई दिन प्रयत्न करने के पश्चात् एक बार दिन को वह उसी गली से निकला। उस समय भी ललिता दूकान में बैठी थी। सेठ माधवशरण का पन्द्रह-बीस वर्ष पहले स्वर्गवास हो चुका था। परन्तु आदर्श-पिता की आदर्श-पुत्री ललिता अपने पिता के कार्य को बड़ी सफलता के साथ किये जा रही थी। उसकी आँखें सड़क की ओर लगी थीं। यह दृश्य देखकर श्यामसुन्दर के हृदय में जो पीड़ा हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसकी दशा उन्मत्तों की सी हो गयी। वह अनायास आकर उस द्वार के सामने खड़ा हो गया, जिसमें से ललिता का सौन्दर्य और यौवन निकल-निकलकर सड़क की धूल में मिल गया था। ललिता भी एक विचित्र दृष्टि से इस नवागन्तुक को देखने लगी। श्यामसुन्दर के मुँह से अनायास निकल पड़ा—

"ललिता!"

अब ललिता को उसके पहचानने में देर न लगी। उसके वृद्ध शरीर में यौवन की लज्जा लहरा उठी! उसका हाथ अञ्चल के एक छोर पर पहुँच गया और उसका यौवन-प्राप्त मुख फिर से आप से आप दूसरी ओर को घूम गया।

श्यामसुन्दर ने फिर कहा—"ललिता!"

इस बार ललिता उठी और किवाड़ की आड़ में जाकर खड़ी हो गयी और वहाँ से मन्द स्वर में बोली—"क्या आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया ?"

श्यामसुन्दर इस प्रश्न का उत्तर सोचकर घर से नहीं निकला था। उसके होंठ हिले। मुँह से कुछ शब्द भी निकले। पर उसने क्या कहा, यह शायद वह भी नहीं समझ सका। दूसरे ही क्षण उसके पैर उसे वहाँ से न जाने कहाँ खींच ले गये। थोड़ी देर पश्चात् जब ललिता ने सड़क की ओर देखा तो उसे चारों ओर बहुत दूर तक सूना दिखाई पड़ा। वह सड़क पर उतरी। दोनों ओर कुछ दूर तक गयी। फिर लौट आयी। वह सोचने लगी कि उसने व्यर्थ श्यामसुन्दर से ऐसा प्रश्न किया। उसे उचित था कि वह उसे बैठाती, उसका हाल पूछती, अपना हाल उसे सुनाती। पर अब क्या हो सकता था! जिसकी बाट जोहते-जोहते उसकी आँखों का प्रकाश क्षीण हो चला था, वही उसके द्वार तक आकर फिर वापस चला गया।

परन्तु ललिता को अब भी आशा है कि वह उस मार्ग से कभी न कभी फिर निकलेगा, अवश्य निकलेगा। इसीलिए वह अब भी रात-दिन अपनी दूकान में बैठी सड़क की ओर देखती रहती है!

समान ही अनुकरणीय है। एक गरीब झोपड़ी में जन्म लेकर अपने सदाचार, उद्योग, साहस, परोपकार इत्यादि दैवी गुणों के बल पर मनुष्य कहाँ तक उन्नति कर सकता है, इसका आदर्श यदि आपको देखना है, तो महात्मा लिंकन का यह सचित्र जीवनचरित्र अवश्य पढ़िये। मूल्य ।।=) आने।

५ ग्रीस का इतिहास—ग्रीस देश के प्रारम्भिक इतिहास से लेकर रोम के शासनकाल तक का इतिहास, प्रसिद्ध ग्रन्थकारों की सूची और उनका समय, ग्रीस की प्राचीन सभ्यता, वहाँ की धार्मिक, राजनैतिक इत्यादि क्रान्तियाँ, सिकन्दर बादशाह का पराक्रम इत्यादि बातों का सच्चा सच्चा वृत्तान्त यदि आप को जानना है, तो इस इतिहास-ग्रन्थ को मँगाकर अवश्य पढ़ें। मूल्य १=) है।

६ रोम का इतिहास—ग्रीस के इतिहास की तरह रोम का इतिहास भी प्रो० ज्वालाप्रसाद जी एम० ए० से लिखवाकर हमने प्रकाशित कर दिया है। दोनों इतिहास राष्ट्रीय पाठशालाओं में पढ़ाने योग्य हैं। सम्मेलन और महिला-विद्यापीठ की परीक्षाओं में भी हमारे इतिहास-ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं। इतिहास-प्रेमियों को यह इतिहास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।।।) आने।

७ इटली की स्वाधीनता—मेज़िनी, ग्यारीबाल्डी, इत्यादि वीर और पराक्रमी देशभक्तों ने अपनी मातृभूमि इटली को परकीय अत्याचारी शासन से मुक्त करके स्वतंत्र किस प्रकार बना दिया, इसका मनोरंजक और बोधप्रद इतिहास पं० नन्दकुमारदेव शर्मा ने बड़ी योग्यता के साथ लिखा है। प्रत्येक देशप्रेमी को यह पुस्तक मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ।।) आने।

८ मराठों का उत्कर्ष—वीरकेशरी छत्रपति शिवाजी ने यवनों का दमन करके हिन्दू राज्य किस प्रकार स्थापित किया; और फिर किन किन राजनीतिक भूलों से भारत का राज्य विदेशियों के हाथ में चला गया—इसका विस्तृत इतिहास इस पुस्तक में दिया गया है। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १।।) रु०।

९ सचित्र दिल्ली—यदि आप को घर बैठे दिल्ली की सैर करनी है, तो आप बारह आने खर्च करके इस पुस्तक को मँगा लीजिए। इस में महाराज युधिष्ठिर के समय से लेकर वर्त्तमान समय तक का सारा दिल्ली का इतिहास और वहाँ की प्रसिद्ध इतिहासिक इमारतों का सचित्र वर्णन दिया गया है। चित्र देखकर आप मुग्ध हो जाँयगे। पुस्तक बहुत सुन्दर छपी है। मूल्य ।।।) आने।

१० सदाचार और नीति—मनुष्य के दैनिक व्यवहार नीति और सदाचार पर ही अवलम्बित हैं। इस पुस्तक में धार्मिक और नैतिक आचरण पर पूरा पूरा प्रकाश डाला गया है। इतिहास के मनोरंजक दृष्टान्त, संस्कृत और हिन्दी कवियों के उपदेशपूर्ण वचन भी बीच बीच में दिये गये हैं। आबाल-वृद्ध, नर-नारी सबके लिए पुस्तक उपयोगी है। मूल्य ।।=) आने।

११ धर्मशिक्षा—श्रुति, स्मृति, पुराण, महाभारत, उपनिषद्, गीता, षड्दर्शन और अनेक धर्मग्रंथों का खूब स्वाध्याय करके यह "धर्मशिक्षा" लिखी गई है। हिन्दूधर्म के विद्यार्थियों के लिए इससे अधिक उपयोगी अन्य कोई भी ग्रन्थ हिन्दी भाषा में नहीं है। धार्मिक शिक्षा के प्रेमियों को अवश्य इसका प्रचार करना चाहिए। मूल्य १) रु०।

१२ गार्हस्थ्यशास्त्र—गृहदेवियों के लिए इससे अधिक लाभदायक और कोई पुस्तक नहीं है। यदि आप अपनी बहिनों और बहू-बेटियों को गृहप्रबन्ध में दक्ष बनाना चाहते हैं, तो यह पुस्तक अवश्य उनके हाथ में दें। गृहप्रबन्ध की कोई भी बात ऐसी नहीं, जो इसमें न आ गई हो। प्रत्येक घर में दिन दिन इस पुस्तक का

प्रचार बढ़ रहा है। ब्याह-शादी के अवसर पर यह पुस्तक दहेज में देने योग्य है। पृष्ठ-संख्या लगभग पौने तीन सौ। मूल्य १) रु०।

१३ हृदय का कांटा—श्रीमती कुमारी तेजरानीजी दीक्षित बी० ए० ने इस मौलिक उपन्यास को बड़े मनोयोग से लिखा है। उपन्यास जैसा मनोरंजक है, वैसा ही उपदेशप्रद भी है। हिन्दी और अँगरेज़ी के सभी प्रसिद्ध पत्रों ने मुक्तकंठ से इस उपन्यास की प्रशंसा की है। आप भी इस उपन्यास को मँगाकर एक बार अवश्य पढ़ें। इसकी छपाई-सफ़ाई और बाहरी रंगरूप भी बहुत ही मोहक है। मूल्य सिर्फ़ १।।) रु०।

१४ बिखरा फूल—बँगला की सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका श्रीमती स्वर्णकुमारीदेवी के "छिन्न मुकुल" नामक प्रसिद्ध उपन्यास का सुन्दर अनुवाद। भाषा और भाव बिलकुल अपूर्व। शृंगार और करुण-रस का अनोखा सम्मिश्रण। ललित उपन्यास-कला का मनोहारी प्रदर्शन। भिन्न-भिन्न मानवी चरित्रों का मनोमुग्धकारी वर्णन। पढ़कर आपका चित्त प्रसन्न हो जायगा। पुस्तक जैसी भीतर से हृदय-हारिणी है, वैसी ही ऊपर से नेत्र-रंजनकारिणी भी है। एक बार मँगाकर अवश्य देखिये। मूल्य सिर्फ़ १।।) रु०।

सब पुस्तकें मिलने का पता—

व्यवस्थापक,

तरुण-भारत-ग्रन्थावली,

दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—रामप्रसाद वाजपेयी, कृष्ण-प्रेस, हिवेट रोड, प्रयाग।

तरुण-भारत-ग्रन्थावली

[सम्पादक पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी]

स्थायी ग्राहक बनने के नियम

१—इतिहास, जीवनचरित्र, सदाचार और नीति, विज्ञान, कविता, आख्यायिका, सुरुचिपूर्ण नाटक, उपन्यास, इत्यादि विषयों के उत्तमोत्तम ग्रन्थ सुलभ मूल्य पर प्रकाशित करना इस ग्रन्थावली का मुख्य उद्देश्य है।

२—आठ आना प्रवेश-फीस भेजकर सब लोग इसके स्थायी ग्राहक बन सकते हैं।

३—स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थावली के सब अगले और पिछले ग्रन्थ पौनी कीमत पर, यानी एक-चौथाई कमीशन काटकर, दिये जाते हैं। वे ग्रन्थावली के प्रत्येक ग्रन्थ की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, पौने मूल्य पर ही प्राप्त कर सकते हैं।

४—कोई भी नवीन ग्रन्थ निकलने पर दस-बारह दिन पहले उसका वी० पी० भेजने की सूचना स्थायी ग्राहकों को दे दी जाती है। ग्राहकों को वी० पी० वापस नहीं करना चाहिए; क्योंकि इससे कार्यालय को व्यर्थ की हानि उठानी पड़ती है।

५—जिन ग्राहकों का वी० पी० तीन बार लगातार वापस आता है, उनका नाम स्थायी ग्राहकों से अलग कर दिया जाता है।

६—प्रत्येक मातृ-भाषा-हितैषी का परम पवित्र कर्त्तव्य है कि इस ग्रन्थावली के स्थाई ग्राहक बनकर हमारे इस शुभ-कार्य में सहायता करे। क्योंकि हमारा उद्देश्य केवल पुस्तकों का व्यापार ही नहीं है; बल्कि हिन्दी-साहित्य में सुरुचिपूर्ण ग्रन्थों का विस्तार करना हमारा मुख्य लक्ष्य है। हिन्दी-साहित्य की आवश्यकता को ही देखकर हम ग्रन्थों का चुनाव करते हैं।

—व्यवस्थापक

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागंज, प्रयाग